अध्याय–चतुर्थ

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

अध्याय–4

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की आर्थिक, धार्मिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

बीसवीं शताब्दी में जितना महत्त्व उपन्यासों को मिला उतना अन्य विद्या को नहीं मिला। जीवन संघर्ष और मानव के अंतद्वंद का सफल चित्रण आधुनिक उपन्यासों में देखने को मिलता है। आज परिवर्तन का चक्र द्रुत गति से चल रहा है। मानव मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है। हमारे रीति–रिवाज, परम्पराएँ परिवर्तित हो रही हैं। आधुनिक दौर विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। जैसे–जैसे समाज औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास की ओर बढ़ता गया, वैसे ही सभ्यता और संस्कृति में नवीनता का प्रारम्भ हुआ। उपन्यासों में परिवर्तन हुआ है। विश्व के अनेक महान चिंतको ने मानव मूल्यों को इसी माध्यम से प्रचारित किया है। अब उपन्यास सिर्फ मनोरंजन की वस्तु नहीं रहा, वरन् महान् सत्यों एवं नैतिक आदर्शों का वाहक बन गया है। आधुनिक उपन्यास सामाजिक मूल्यों की सफल अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया है।

आज का युग गद्य का युग है। यह वैज्ञानिक प्रभाव के कारण है आज साहित्य की अन्य विधाओं को पछाड़कर उपन्यास निरंतर आगे बढ़ रहा है। वर्तमान युग में लेखक और पाठक दोनों के लिए उपन्यास अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। ''आज के जीवन के भावसत्य को अपनी समग्रता में सभी स्तरों और आयामों, व्यापकता और गहनता के दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नहीं।''[239] वस्तु का यथातथ्य चित्रण इसी विद्या में संभव होता है। ''सत्य का वास्तविक अंदेशा उपन्यास के अतिरिक्त किसी माध्यम द्वारा संभव नहीं।''[240]

उपन्यास की पूर्व जानकारी इंटरनेट से हिन्दी साहित्य का गद्य विद्या हिन्दी उपन्यास इन्टरनेट से मानव समाज एवं संस्कृति का समग्र चित्रण उपन्यास में हो सकता है। बदलते जीवन मूल्यों की स्पष्ट झाँकी उपन्यास में देखी जा सकती है।

239 उपन्यास की पूर्व जानकारी इंटरनेट से।

240 हिन्दी साहित्य का गद्य विद्या हिन्दी उपन्यास इन्टरनेट से।

''उपन्यास ही ऐसा साहित्यिक माध्यम है। जिसके द्वारा हम अपने सामाजिक जीवन में उठने वाली अधिकांश समस्याओं पर विचार कर सकते हैं।''[241]

इस प्रकार वर्तमान समाज के वास्तविक जीवन की चित्रशाला उपन्यास ही है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास रचनात्मक साहित्य की विधाओं में सबसे अधिक समृद्ध है। समकालीन हिन्दी उपन्यास की साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी ग्रामीण भावाभिव्यक्ति तथा विभिन्न ग्रामीण समस्याओं के चित्रण के लिए उपन्यास जैसे सशक्त विद्या का चयन किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में जिन ग्रामीण समस्याओं को अंकित किया है, वे निम्न हैं –आर्थिक समस्या, धार्मिक समस्या, राजनीतिक समस्या तथा सांस्कृतिक समस्या। लेखिका ने जीवन से सम्बन्धित इन सारी समस्याओं का उल्लेख अपने उपन्यासों में किया है। मैत्रेयी जी ने स्त्री–पुरुष को आधार बना कर इन समस्याओं की चर्चा अपने उपन्यासों में की है।

4.1 मैत्रेयीपुष्पा के समय आर्थिक परिस्थितियाँ

हमारे जटिल समाज में हर चीज की तरह स्त्रियों की हैसियत भी कही न कही आर्थिक बुनियाद पर टिकी है। औरत की दोयम दरजे की हैसियत का मूल आधार है– उनकी आर्थिक पराधीनता जिसका मूल कारण है पुरुषात्मक सत्ता।

जगदीश्वर चतुर्वेदी इस संदर्भ में कहते हैं कि –"स्त्री की स्वाधीनता, समानता, सम्मान, सत्ता में शिरकत का संघर्ष और शिक्षा एवं रोजगार के संघर्ष को पितृ सत्ता विरोधी साहित्य की कोटि में रखा जाना चाहिए। स्त्री की पराधीनता को आर्थिक पराधीनता से जोड़कर देखने वाली रचनाएं भी इसी कोटि में आयेगी। घरेलू कामकाज एवं घरेलू दास्तां के छोटे–छोटे रूपों का रूपायन, स्त्री को पुण्य या वस्तु में बदलने एवं स्त्री को माल बना देने वाली मानसिकता के खिलाफ संघर्ष को व्यक्त करने वाली रचनाएँ इसी कोटि में आयेगी।"[242]

डॉ. निर्मल जैन ने विभिन्न महिला लेखिकाओं के स्त्री सम्बन्धित कथा–साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है कि–

241 हिन्दी साहित्य का गद्य विद्या हिन्दी उपन्यास इन्टरनेट से।

242 जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ. संख्या 246–247।

"इतिहास साक्षी है कि पुरुष ने स्त्री को जिन दो मोर्चों पर लगातार कुचला है, उनमें से एक अर्थ और दूसरा सेक्स। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के लिए संघर्ष करती हुई स्त्री, महिला लेखिकाओं की प्रिय थीम है।"[243]

लेखिका ने अविवाहित स्त्रियों के जीवन पर गौर करते हुए आर्थिक स्थिति पर सवाल उठाये हैं। विवाह से पूर्व लड़कियो के संरक्षक पिता और भाई होते हैं। जिससे उन्हें आर्थिक रूप से उनके अधीन रहना पड़ता है। उनके आदेशों का पालन करना पड़ता है। उनकी मर्जी के बगैर वे कोई भी निर्णय नहीं ले सकती। पिता की सम्पत्ति पर उसका कोई हक नहीं होता तो उसे भी उसे आत्मनिर्भर क्यों नहीं बनने देते ? आर्थिक पर निर्भरता के कारण ही वे सदैव दूसरों की मोहताज रहती हैं। कन्या होने के अपमान को झेलती है तथा परिवार पर बोझ बनी रहती है। इस संदर्भ में एक स्थल पर उर्वशी कहती है –

"भगवान काहे के लाने बिटिया को जन्म देता है ? वह नहीं जानत कि लड़की पैदा होके कितो को विपदा में डार देगी। देख रही मीरा तुम .... हम न होते तो इती कलेस मचती ?"[244]

यही कारण है कि उसके विवाह में भी उसी मर्जी को शामिल नहीं किया जाता। उसे अपनी पूरी जिंदगी अपने परिवार के द्वारा बनाये गये रिश्तों के साथ ही निभानी पड़ती है। क्योंकि वह आर्थिक रूप से पुरुष सत्ता के शिकंजे मे जकड़ी रहती है। मैत्रेयी पुष्पा ऐसे ही कुछ आर्थिक सवालों से उलझती हुई दिखाई देती है। मैत्रेयी जी पुत्री को पिता की सम्पति जायदाद का बराबर भागीदार होना आवश्यक मानती है। ऐसा होने से ही स्त्रियों का आर्थिक पक्ष मजबूत हो सकेगा। स्त्री का अपने घर, परिवार को छोड़कर दूसरे घर में जाना उसके जीवन की बहुत बड़ी त्रासदी है। वे सवाल करती है कि जिस घर में वह पैदा हुई, जिन माता–पिता ने उसका लालन–पालन किया। उनकी सम्पत्ति पर व्यवहारिक रूप से उसका कोई हक क्यों नहीं है ? मैत्रेयी जी इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ही कहती है कि "यह कैसा इंसाफ है ? क्या लड़की को अपनी मर्जी से जीने का अधिकार नहीं

---

243 डॉ. निर्मल जैन, हंस, जुलाई 1994, पृ. संख्या 41

244 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 पृ. संख्या 28

है और यह तभी संभव हो पायेगा जब उसे पिता की सम्पत्ति का भागीदार बनाया जायेगा।''[245]

प्रत्येक पुरुष यह चाहता है कि उसे ऐसी पत्नी या औरत मिले जिसका अपना कोई वजूद न हो, जो उसकी गुफा में कैद रहे। या तो नैतिक–अनैतिक की परवाह किये बिने उनके आदेशों का पालन करे या फिर दर–बदर की ठोकरें खाओ। शिक्षित एवं योग्य होने के बावजूद भी उनकी गुलाम रहो। विरोध करने पर उसे तलाक दे दिया जाता है। जो उसके जीवन भर की सजा होती है लेकिन तलाक के बाद उसके जीवन निर्वाह का भार कौन संभालेगा ? वही पति या वही भाई जो उसकी नौकरी करने पर पाबन्दी लगाते रहे हैं। पति से सम्बन्ध–विच्छेद करने वाली स्त्री को समाज दोषी ठहराता है तथा घरेलू काम–काज के बदले में आर्थिक संबल मिलने के स्थान पर उसे सामाजिक प्रताड़ना ही मिलती है। इन परिस्थितियों को देखते हुए मैत्रेयी पुष्पा लिखती है–

"पति और बच्चों को छोड़कर भागने वाली औरत, परिवार और समाज की अपराधिनी, मर्यादा के नाम पर बदनुमा धब्बा, घृणित और संगीन सजा की अधिकारिणी।"[246]

विजन की डा० आभा की सास अपनी बहू को बार बार यह तर्क देती है–

''नौकरी करना उनके लिए जरूरी नहीं। जीवन–यापन के लिए पति पर आश्रित रह सकती है।''[247] ऐसी मानसिकता रखने वाली स्त्रियों से यह पूछा जाये कि ये तब सामने क्यों नहीं आती। जब उनके बेटे उनकी बहु को घर से बाहर कर देते हैं। उन्हें बुरा–भला कहा जाता है। उन पर इल्जाम लगाये जाते है। ऐसी स्त्रियों का दुर्भाग्य तो देखिए कि न तो इनका साथ ससुराल वाले देते हैं और न ही मायके वाले। इसका उदाहरण डॉ. आभा है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता की माँग करने वाली डॉ. आभा जब अपने पति के हाथों पिटती है। तो उसके पापा भी उसकी कोई मदद नहीं कर पाते। वे अपनी बेटी को भगवान के भरोसे छोड़कर अपने कर्तव्य से मुक्ति पा लेते हैं।

---

245 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 पृ. संख्या 29
246 मैत्रेयी पुष्पा, हंस, नवम्बर 2005, पृ. संख्या 66
247 मैत्रेयी पुष्पा, विजन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002 पृ. संख्या 114

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास साहित्य महिलाओं के आर्थिक शोषण के यर्थाथ चित्रण प्रस्तुत करता हैं। हमारे भारतीय समाज में स्त्री किस तरह कठिन परिस्थितियां झेलते हुए परिवार का जीवन यापन करती हैं तथा मायके, ससुराल समाज में शोषण प्रक्रिया से गुजरती हैं इसका दुलर्भ चित्रण मैत्रेयी जी के कथा साहित्य में मिलता हैं। धन का अभाव क्या नहीं करवाता, जब पेट भूखा होता है तो अपना शरीर तक गिरवी रखने की नौबत आ जाती हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में ऐसी ही करूणात्मक विडम्बना का चित्रण हुआ हैं। पहाडों पर काम करने वाली मजदूर स्त्रियां अपनी गरीबी के कारण क्रेशर मालिकों और ठेकेदारों द्वारा आर्थिक एवं दैहिक शोषण का शिकार होती हैं। यह कितनी मार्मिक विडम्बना है कि पेट की भूख मिटाने के लिए उसे अपना शरीर दांव पर लगाना पडता है। सामाजिक – आर्थिक प्रतिष्ठा के लिए स्त्री को हर कदम पर ऐसे शोषण से गुजरना पडता हैं। दहेज ना लाने के कारण कुसुमा का पति उसे अपनाने से इंकार कर देता हैं तथा दूसरी शादी कर लेता हैं। कुसुमा इस हेतु अपने माता – पिता की निर्धनता को कोसती हैं। 'वह मंदाकिनी से कहती हैं :– ''खोट तो हमारे मतारी– बाप का था। वे गरीब काहे थे ? गरीब थे तो अपने बिटिया के लिए सुख के सपने काहे देखे ?"[248] निर्धन होने के कारण किस प्रकार एक स्त्री दहेज लोभियों द्वारा छली जाती हैं इसका जीवन दस्तावेज इदन्नमम उपन्यास हैं। अल्मा कबूतरी उपन्यास में भी कबूतरा जाति की स्त्रियां कज्जा वर्ग के पुरूष तथा पुलिस वालों की अमानवीय प्रताडनाओं का शिकार होती है। जिनके पास जीने का आधार (रोटी, कपडा – मकान) ना हो वो विरोध किस आधार पर करेंगें। अल्मा कबूतरी उपन्यास में निर्धन को अत्याचार सहने में विवश माना है।

'विजन' उपन्यास में डॉक्टर 'नेहा– अत्यन्त होनहार और प्रभावशाली है, किन्तु उसके माता – पिता द्‌वारा उसका विवाह नेहा की तुलना में कम पढे – लिखें डाक्टर के साथ करवाया जाता हैं। जिससे नेहा की प्रतिभा का हनन होता हैं तथा उसकी व्यक्तित्व स्वंतन्त्रंता का ह्रास होता हैं। नेहा के माता – पिता विवाह से पूर्व अपनी निर्धनता को ध्यान में रखकर कम पढें लिखें डॉ0 अजय शरण का चयन

---

248 मैत्रेयी पुष्पा : कस्तुरी कुण्डल बसै, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2003, पृं.–34

करते हैं। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका उर्वशी धनाभाव के कारण पुरूष शोषण का शिकार होती हैं। अभावग्रस्त जीवन जीने को मजबूर उर्वशी अपने भाई अजीत को स्वार्थवृत्ति का शिकार होने से बचाती हैं किन्तु अपने विवाहोपरान्त भाई द्वारा अपना खेत बरजोरसिंह को बेच दिया जाता हैं। शिक्षा के अधिकार से वंचित उर्वशी जब इसका मन्थन अपनी सखी मीरा से कहती हे तो मीरा स्वंय यह कहती है :– ''उर्वशी की यह कथा उर्वशी उसी की क्या, किसी भी ग्रामीण कन्या की व्यथा हो सकती हैं। विपन्नता का अभिशाप – शोषण और सनातन संधर्ष। एक विवश यातनामय नारकीय जीवन।''[249] स्पष्ट है कि धन का अभाव नारी के शोषण का मूल कारण बनता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का मानना है कि घर की व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था, दोनों ही में स्त्रियाँ हाड़–तोड़ मेहनत मुशक्कल मेहनत कर बराबर का योगदान देती है। आर्थिक दृष्टि से पुरुष से बराबरी करने के पीछे उनके श्रमशील व्यक्तित्व की भूमिका एक निर्वाचन तत्व है जिसे नजर–अंदाज नहीं किया जाना चाहिए। इन्होंने यहाँ स्त्रियों की आर्थिक परनिर्भरता को व्यक्त करने के साथ ही उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित किया है। कस्तूरी के इस कथन में लेखिका का स्त्रीत्व के लिए संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है:–

''लाली, न जमीन न जल, न हवा, न इज्जत, न आबरू। सब हमारे आसपास घिरे मर्दों का है, जब चाहें बख्श दें, जब चाहे उतार लें। पर हम फिर भी लड़ेंगे अपनी जान के लिए, अपनी इन्द्रियों के लिए अपने इंसान होने के लिए।''[250]

भारत में स्त्री की जिस छवि को मान्यता दी गयी, वह परिवार पालने वाली स्त्री, परिवार और समुदाय में अनेक दायित्वों से बँधी थी। आर्थिक रूप से वह पुरुष पर ही निर्भर रहती है उसके श्रम का कोई मूल्य नहीं दिया जाता। इसलिए वह आजीवन पुरुष की गुलाम बनी रहती है। संयुक्त राष्ट्र की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार :–

''विश्व की कुल आबादी का आधा हिस्सा महिलाएँ है और दुनिया भर में किये जाने वाले कुल काम में दो तिहाई (66 प्रतिशत) योगदान औरतों का होता है। पर इतनी मेहनत के बदले में वे पाती है। केवल दस प्रतिशत मेहनताना और कुल

---

249 मैत्रेयी पुष्पा : बेतवा बहती रही, नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, संस्करण–2006, पृं.–6
250 मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2012 पृ. संख्या 208

सम्पति में से मात्र एक प्रतिशत पर उनका वास्तविक अधिकार है। उनका राजनीतिक संरक्षण और प्रतिनिधित्व अभी नगण्य है।''[251]

4.2 शोषण में सहायक सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी

इस तरह सदियों से कुचला जाने वाला यह समाज मनुष्य के अधिकार की माँग करने की कोशिश करता है तो उसे लाखों यातनाओं से गुजरना पड़ता है। 'अल्मा कबूतरी' में अल्मा का पिता रामसिंह को पढ़ाने की कसम उसकी माँ भूरी कबूतरी लेती है। तब उनका समाज पहले उसका विरोध करता है, परन्तु मनुष्य के अधिकार, मनुष्य की तरह जीवन जीने का ख्वाब देखने वाली भूरी अपने बच्चे रामसिंह को पढ़ाती है। उसके बदले अपना शरीर कज्जा लोगों को समर्पित करती जाती है। हर दिन के बलात्कार को झेलती भूरी कबूतरी अपने रामसिंह को अध्यापक बनाती है। परन्तु किसी अपराधी जाति में अध्यापक बनना, ना मंजूर करने वाला समाज उसे बार–बार पुलिस थाने में ले आता है। सरकारी अफसरों को रिश्वत देकर तंग आकर रामसिंह नौकरी छोड़ देता है।

इस तरह सदियों से जिस वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था ने उच्चवर्णीय समाज रूढ़ि परम्पराओं के सांकल से बाँध रखा है उसे वह अपना श्रेष्ठत्व मानकर चलते हैं। उच्च शिक्षित होकर भी समाज का उच्च वर्णीय समाज जाति–वर्ण से आई श्रेष्ठत्व को त्यागना नहीं चाहती। इसलिए ज्ञान लेकर कोई अपने से श्रेष्ठ बन जाये। यह उन्हें कतई पसन्द नहीं है। इसलिए आज भी भारतीय समाज का उच्च वर्ण अपनी श्रेष्ठता कायम रखने के लिए दलित– आदिवासियों पर अन्याय–अत्याचार कर रहा है।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में जो महत्त्वपूर्ण बात देखने को मिलती है, वह यह है कि लेखिका पुरानी परंपराओं को तोड़कर निर्माण की आकांक्षा नहीं करती। उनकी नजर में तो परंपरा पुरानी भी हो सकती है और नयी भीय बशर्ते पुरानी परंपरा में नई बातें, नयी विधियाँ–प्रविधियाँ शामिल हों। परंपरा में नया रूप जोड़कर उसे सर्वथा नूतन और नवीन रूप प्रदान करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है। पुरुष सत्ता की सामंती व्यवस्था को बदलने का लेखिका का जो सपना है, वह अंत

---

251 डॉ. रेणुका नैय्यर, नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप, पृ. संख्या 15

तक आते–आते अपना साकार रूप लेने लगता है और यहाँ सहभागिता का सकारात्मक और मिला–जुला रूप उपस्थित हो उठता है। लेखिका अपनी जमीन पर खड़ी होकर अपनी लड़ाई लड़ती है। उस जमीन को वह एक पल के लिए भी नहीं छोड़ती।

"समाज को मैत्रेयी की यह बात आखिर बर्दाश्त कैसे होती ? परिणामस्वरूप उसे वह कमरा खाली करना पड़ता है, जिसमें वह रह रही थी। यह समाज–व्यवस्था का सच है कि सच बोलने और वास्तविकताओं को उजागर करने वालों को कभी कुलटा, तो कभी वेश्या जैसे शब्दों से जोड़ दिया जाता है। मैत्रेयी के साथ भी यही होता है। इतना सब सहने के बावजूद मैत्रेयी अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग रहती है।"[252]

परंपरा कहती है कि विधवा स्त्री की अपनी कोई इच्छाएँ नहीं होती। मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा के माध्यम से एक विधवा जीवन की हकीकत हमारे सामने लाती हैं। समाज की मर्यादा, नैतिकता के समक्ष कस्तूरी (विधवा) अपनी स्वाभाविक इच्छा का विकल्प समलैंगिकता में ढूँढ़ लेती है। मैत्रेयी यहाँ यह बताना चाहती हैं कि कैसे एक स्त्री अपनी सेक्स इच्छा को दमित करने के लिए मजबूर हो जाती है। कस्तूरी यहाँ एक नया मार्ग तलाशती है और वैधव्य को त्यागकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति गौरा के माध्यम से करती है। यहाँ वे परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके कारण एक स्त्री समलैंगिकता का मार्ग अपनाने को बाध्य हो उठती है। कैसा समाज है यह ? जहाँ स्त्री की इच्छाओं–आकांक्षाओं का कोई महत्त्व ही नहीं ? मैत्रेयी एक ऐसे समाज को निर्मित करना चाहती है, जहाँ स्त्री को अपने जीवन के मानदंड तय करने का पूरा अधिकार मिले। कस्तूरी की यौनाकांक्षा के माध्यम से मैत्रेयी एक नया विमर्श खड़ा करती है। आज भी समाज विधवा स्त्री को एक चौखटे के भीतर जीने को बाध्य करता है। मैत्रेयी इस चौखटे को तोड़कर एक बदलाव, एक निर्मिति चाहती हैं और परिवर्तन की उम्मीद लिए वह स्त्री के लिए सेक्स को वर्जित बनाने के ढोंग का खुलासा करती हैं। मैत्रेयी कहना चाहती हैं कि स्त्री को, पुरुषों के समान अधिकार और स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, तभी एक उन्नत समाज का निर्माण

---

252 डॉ0 शोभा यशवंते – मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, 2009 ई0, पृ0सं0 68

होगा। जब पुरुष अपनी देह का स्वामी हो सकता है, तो स्त्री क्यों नहीं ? 'सेक्स के मामले में समानता' के मुद्दे को उठाकर मैत्रेयी पुष्पा 'फीमेल सेक्सुअल्टी' के सवाल को खड़ा करती हैं। भारतीय समाज–व्यवस्था पुरुष के सक्रिय होने की बात तो करता है, लेकिन स्त्री की नहीं। अपने वैवाहिक जीवन के माध्यम से मैत्रेयी इस धारणा को पूरी तरह ध्वस्त कर देती है। वह पति से सीधे सवाल करती है – "पहले बताओ कि मर्द की कूबत नहीं थी, तो ब्याह क्यों किया ? हमने पार लगा दिया तो नखरे पसारने लगे ? समझे रहना कि नखरे–बखरे अच्छे नहीं लगते।"[253]

आत्मकथा के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा एक स्त्री की राजनीतिक सक्रियता के मुद्दे को भी उठाती हैं साथ ही देश के राजनीतिक दाव–पेंच और शासन–व्यवस्था की पोल को काफी हद तक खोल देती हैं। मुख्यमंत्री द्वारा कस्तूरी के पद और उसके आंदोलन को खत्म कर उसे जेल में बंद करने संबंधी प्रसंग एक स्त्री के सच को हमारे सामने लाते हैं। स्त्री को 'औरत जात' कहकर बहलाने की बात की जाती है, लेकिन कस्तूरी समाज और शासन व्यवस्था की इन झूठी बातों में नहीं आती है। यहाँ उसका स्वर सम्पूर्ण स्त्री–जाति की चेतना के स्वर को हमारे सामने लाता है। मैत्रेयी का यह कहना वास्तव में प्रासंगिक है–"जब तक स्त्री आजाद नहीं होगी, उसके विचार स्वच्छंद नहीं होंगे, तब तक हम कैसे मान लें कि देश ने आजादी हासिल कर ली है या फिर देश आजाद है।"[254]

4.3 शोषक वर्ग का क्रूर अत्याचार

मैत्रेयी पुष्ण के उपन्यासों मे राजनीतिक चेतना सम्पन्न नारी पात्रों में प्रायः ऐसी ग्रामीण नारियों का चित्रण हुआ, जिनमें वर्ग–संघर्ष की भावना तीव्र रूप से निहित है। उनमें अपने अधिकारों के लिए सचेत रहने की भावना है। यही भावना उनमें शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह करने की शक्ति पैदा करती है। इनके उपन्यासों में कुछ नारी पात्र सक्रिय तथा कुछ निष्क्रय रूप से राजनीतिक क्रियाकलापों में भाग लेते हैं। यद्यपि भारतीय महिलाओं को नागरिक के रूप में संवैधानिक आधार पर राजनीति में भाग लेने के अवसर प्रारम्भ से ही प्राप्त हुए हैं। किन्तु राजनीतिक

---

253 मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1994 पृ० 56

254 मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2012 पृ0 125

निर्णयकारिता में महिलाओं की भागीदारी स्वतंत्रता के पाँच दशकों के बाद भी उल्लेखनीय रूप से नहीं हो पाई है। महिलाएं आज भी हाशिये पर बने प्रारम्भिक वर्गों का सबसे बड़ा मात्र है। इसका कारण यह है कि पुरुष वर्ग स्त्री को राजनीति में भाग लेने से रोकता रहा है।

''मैत्रेयी जी के उपन्यासों में यह महसूस किया गया है कि यदि महिलाओं को निर्णयकारिता के स्तर पर पहुँचना सुलभ कर दिया जाए तो महिलाओं की समस्याओं को सुलझाने में सरलता होगी। वह अपने अधिकारों के लिए आवाज उठायेगी। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के विभिन्न कार्यक्रमों को सम्पादित करने में भी महिलाओं की रचनात्मक क्षमता का सदुपयोग हो सकेगा। इसके साथ–साथ यह दृष्टिकोण भी सामने आया है कि महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं को निर्णय करने की प्रक्रिया से जोड़ना होगा, चाहे यह घर की चारदीवारी में लिये जाने आरक्षण ने स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं की उपस्थिति निश्चित करके ग्रामीण और शहरी स्तरों पर पुरुषों की यह स्थिति स्वीकार करने के लिए बाध्य किया है। भले ही प्रारम्भिक दौर में महिलाओं की कार्यकुशलता, क्षमता तथा पुरूषों के प्रति छाया होने के सम्बन्ध में बार–बार संदेह व्यक्त किया गया। किन्तु अब महिलाओं की कार्यप्रणाली के प्रति विश्वास में निश्चित रूप से अन्तर आया है। अनेक महिला प्रधानों ने महिला पंचायत सदस्यो की सहायता से शराबखोरी, दहेज के मुद्दों पर आम राय तथा रूढ़िवादी विचारों का दृढता से विरोध किया है।''[255]

मैत्रेयी जी ने यह अनुभव किया है कि समाज में अपना उचित स्थान पाने के लिए स्त्री को राजनीति में उतरना होगा। इसलिए वह नई चुनौतीपूर्ण भूमिका को स्वीकार कर सामाजिक विकास के लिए प्रयत्न करती है। 'इदन्नमम' उपन्यास की मंदा एक ऐसी दृढ–संकल्प नारी का व्यक्तित्व लेकर उभरती हैं। जो अपने गाँव के विकास के लिए चिंतित ही नहीं रहती, बल्कि संघर्ष भी करती है। भले ही वह प्रधान बनने के लिए कोई चुनाव नहीं लड़ती, फिर भी उसकी भूमिका गांव के प्रधान से कम नहीं है। जब राजा जी महाराज से पूछते हैं कि यह मंदा कौन है ? कौनसी

---

255 प्रकाश नारायण नाटाणी, मानवाधिकार एवं महिलाएँ, पृ. संख्या 257

पार्टी की नेता या कार्यकर्ता है? या फिर मजदूर यूनियन वगैरह से जुड़ी हैं गोपालपुरा में यह बताया है कि वोटों के लिए सोनपुरा में मन्दाकिनी से मिल लेना। इसके उत्तर में महाराज कहते हैं –

''राजाजी, मंदाकिनी इस गाँव की बेटी है.................. हमे तो लगता है, मंदा इस गाँव की नहीं, इस क्षेत्र की भूमिसुता है, जो इस धरती की 'रग–रग' को पहचानती है। जैसे यहाँ के आदमी की धड़कन से चलती हो उसकी साँसें अवश्य मिलिए उससे। यहाँ की जनता मानती है उसको, विश्वास करती है उस पर।''[256]

महाराज के उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि मंदा मे वह सारी खूबियाँ है। जो गांव के प्रधान में होनी चाहिए। वह अपने गाँव की समस्याओं के प्रति सचेत है, इसलिए वह राजा जी को गाँव की समस्याओं को अवगत कराती हुई कहती है :– ''यह हमारा अस्पताल................ कोई डाक्टर नहीं यहाँ, दवाएँ नहीं, हारी–बीमारी के निवारण की कोई सुविधा नहीं, इस अस्पताल से तबाह ही हुए हैं और इस अस्पताल की झूठी आशा – उम्मीद ने अब तक जिताया है आपको। क्रैशरों ने पहाड़ काटकर उसके पत्थर ही नहीं पीसे, यहाँ के लोगों का जीवन पीस डाला। राई– रेत कर दी साँसे।''[257]

मन्दा निर्भीक और साहसी लड़की है। आत्मविश्वास समझदारी की भी उसमें कोई कमी नहीं है। साथ ही वह नेताओं के स्वभाव एवं उनके राजनीतिक दाँवपेचों को भी भलीभांति समझती है। इसीलिए वह अपने आप से कहती हैं :–

''कठिन घड़ी में भावुकता और आँसू की नहीं, हिम्मत–हौंसले की कीमत होती है। फिर राजा साब कोई घरू संबंधी तो है नहीं, निर्लिप्त राजनेता है, जिन्हें सुख–दुख, प्रेम–घृणा, दया–करुणा, मोह. माया नहीं व्यापती। उन्हें वोट, कुर्सी पद ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे अर्जुन को चिडिया की आँख।''[258]

मंदा राजा जी को गाँव की परेशानियों क` बारे मं` बतान` के साथ ही साथ बड़ी–बड़ी परियोजनाओं के नकारात्मक पक्षों को भी उजागर करती है :–

---

256 मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1994 पृ० 305

257 वहीं, पृ० 316

258 वहीं,, पृ० 307

"..................बड़ी दिक्कत है राजा साब जी, बड़ी परेशानी। क्रैशरों के कारण गाँवों में धूल ही धूल छायी रहती है। पहले के मुकाबले दमा, साँस, तपेदिक कई गुना अधिक फैल गये हैं। मजदूरों के ही नहीं, किसानों के शरीर भी हो गये हैं, इन बीमारियों के घर। क्रैशर क्या आया, शराब के ठेका संग ले आया। सो तबाह हो रही है गृहस्थियाँ। उजड़ रहे है बाल–बच्चे। आदमी पी–पीकर बेसुध हुआ जा रहा है। आपकी पुलिस निहत्थों को ही करता है परेशान। बताइये, किससे कहें ?"[259]

नेता जी के समक्ष मन्दा अपना अटूट फैसला सुना देती है कि अबकी बार यदि हमारी बात नहीं मानी जायेगी तो आपके आदमी खाली पेटी उठा ले जायें। एक भी वोट नहीं पडेग़ ा। आपक` चार–पाँच सौ रूपये से हमारी समस्याओं का समाधान नहीं होता जो आपके कार्यकर्ता हर वोटर को उसके वोट की कीमत देते हैं। मन्दा की हिम्मत और दृढ़ निश्चय का ही परिणाम है कि नेता जी ने डॉ. इन्द्रनील को अपने चुनाव क्षेत्र में जाने के लिए अर्जेन्ट ऑर्डर दिया। कुछ दिनों के लिए ही सही लेकिन गाँव में डॉक्टर तो आ गया। सोनपुरा लौटने के बाद मन्दा सामूहिक संघर्ष और सामाजिक आन्दोलन की पगड़ण्डी परनिकल पड़ती है। पिता के अधूरे सपने (अस्पताल) के लिए प्रयत्न करती है। मजदूरों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है। उनके लिए आगे बढ़कर उनकी सहायता भी करती है। ट्रैक्टर खरीदने के लिए मजदूरों को संगठित कर घर–घर जाकर चन्दा भी माँगती है। गाँव का विकास हो इसके लिए उन्हें जागरूक भी करती है। गाँव के प्रधान को साथ लेकर सभाओं का नेत्तृत्व भी करती है। जिसमें ग्रामवासियों को उनके अधिकारों, उनकी समस्याओं, समाधानों को को बड़ी धूम–धाम के साथ बताती है।

इसलिए गाँव वाले भी उस पर विश्वास करते हैं। मन्दा के संघर्षशील व्यक्तित्व के संदर्भ में अरविन्द जैन अपने लेख 'स्त्री– विमर्श सत्ता और समर्पण' में लिखते हैं –

"ग्रामीण स्तर पर मन्दा की यह भूमिका मेघा पाटकर, किरण बेदी या शबाना आज़मी की आवाज में आवाज मिलाती नजर आती है। औरत होने के साथ–साथ वंचित भी होना उसकी लड़ाई को दोहरा ही नहीं करता, रोज नए चक्रव्यूह को

---

259 मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1994 पृ० 307–308

तोड़ने की चुनौती भी बनता है। गरीबी, बेकारी, जातीयता, संप्रदायिकता, अशिक्षा, राजनीतिक, लूट–खसोट, विकास की आड़ में विस्थापन, भ्रष्ट पुलिस तंत्र और अफरशाही के चंगुल में फंसे ग्रामवासियों के बीच सम्मानपूर्वक जीने की राह बनाने–जुटाने या सामूहिक सहयोग और संघर्ष के लिए जन–समर्थन तैयार करना निःसंदेह हिम्मत और हौंसले का काम है।''[260]

मैत्रेयी पुष्पा कृत प्रकाशित उपन्यास फरिश्ते निकले बुंदेलखंड अंचल में रहने वाली लोहा पीटने वाली जनजाति के शोषणयुक्त यातना और संघर्षमय जीवन की दर्दनाक कहानी है। उपन्यास में मूल कथा अनेकों अंतर्कथाओं को जन्म देती है, जिसमें बेला बहू मुख्य पात्र है। बेला बहू अपने जीवन संघर्ष और शोषण की दुर्दांत कथा बिन्नी यानी लेखिका को सुनाती है। लेखिका ने इस अंचलों में बसने वाले खानाबदोश और अन्य हाशिये के समुदायों का समाज–शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। बेला बहू के जीवन में जो घटनाएँ हैं और जिन व्यक्तियों के साथ उसका वाद–विवाद–संवाद होता है उनका मन में उतर जाने वाला वर्णन मैत्रेयी पुष्पा ने किया है। जीवित रहने और आजाद रहने के अर्थ को व्यापक अर्थ में समझाती बेला बहू हिंदी उपन्यास साहित्य के कुछ अविस्मरणीय चरित्रों में अपना स्थान बनाती है। हाशिये के समाजों के जीवन संघर्ष को अपने उपन्यासों के माध्यम से पहचान दिलाने में मैत्रेयी पुष्पा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपने कथा साहित्य और विमर्श के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा ने किसान, मजदूर, स्त्री और दलित जीवन की प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सच्चाईयों को मुखर किया है। फरिश्ते निकले में उन्होंने बेला बहू का वृत्तान्त रचा है। यह वृत्तान्त बुंदेलखंड अंचल के जटिल और कई परतों में बदलते ग्रामीण और आंचलिक भारत का दस्तावेज बन गया है। लेखिका ने इस उपन्यास की रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है–

यह मेरे ही घर के वासवादत्ता, अल्मा और सिताब जैसे बड़े होते बच्चों की उम्मीदों के लिए है और उन जैसे हजारों–लाखों किशोर–वय बच्चों तथा उनके माता–पिताओं के वास्ते, जो समझेंगे कि समाज में अभी भी वे लोग बचे हुए हैं जो जिंदगी में स्वाभिमान को मनुष्य की सबसे बड़ी दौलत मानते हैं। वे अपनी हिम्मत,

---

260 अरविन्द जैन, हंस, फरवरी, 1997, पृ. संख्या 69

आन–बान और इंसानियत को सबसे ज़्यादा प्यार करते हैं। मैंने ऐसे ही लोगों की छोटी–छोटी कहानियों से इस उपन्यास का ताना–बाना बुना है कि कैसे वे मामूली लोग बड़े और बड़ों के अन्यायों, अत्याचारों और खुद पर लादी हुई गुलामी के खिलाफ लड़े ताकि मोहब्बत, भाईचारे और इंसानियत का सपना सच हो सके।

4.4 ऋण समस्या और ग्रामीण जीवन

'बेतवा बहती रही' नामक उपन्यास हिन्दी साहित्याकाश की एक प्रखर और मुखर लेखिका, माननीया मैत्रेयी पुष्पा जी की एक ऐसी रचना है जिसे किताबघर से वर्ष 1995 में प्रकाशित किया गया था। प्रकाशन के बाद से ही इस पुस्तक ने हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के क्षेत्र में मैत्रेयी पुष्पा के गहरी सोच को स्थापित कर के उनकी साहित्यिक यात्रा के पथ को देदीप्यमान कर दिया। यह उपन्यास इतना प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है कि उस काल के सभी साहित्यकारों को पीछे छोड़ता हुआ मीलों आगे निकल गया है। बेतवा बहती रहीं की विषय वस्तु की गहराई और स्त्री के मन की भावनाओं को अपने लेखन के माध्यम से सार्वजनिक करते हुए एक नए कलेवर प्रदान करने के कारण वर्ष 1995 में उत्तर प्रदेश साहित्य संस्थान द्वारा इस उपन्यास को प्रेमचन्द सम्मान से पुरस्कृत किया गया है। इस उपन्यास के कथानक में मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा भारतीय समाज में वह भी बुंदेलखंड के आंचलिक परिवेश में स्त्री के प्रति होने वाले अन्याय के खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजा दिया है। आप की धारणा है कि इस पुरुष प्रधान समाज में नारी को, चाहे वह ग्रामीण परिवेश की हो अथवा नगरीय, विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता है। इस उपन्यास के कथानक द्वारा मैत्रेयी पुष्पा ने यह संदेश देने का प्रयास किया कि जिस प्रकार बेतवा नदी बहती हुई अपने अन्दर समाहित होने वाली हर गंदगी को साफ करती हुई आगे बढ़ती रहती है, उसी प्रकार भारतीय नारियां भी जीवन में दुखों और बुरे विचारों को छोड़कर अच्छे विचारों का रोपण करके आगे बढ़ती रहती है।[261]

बेतवा बहती रही नामक उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने हमारे देश के बुंदेलखंड अंचल की नारियों की दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक और यथार्थ चित्रण किया है।

---

261 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 पृ० 125

आपके अनुसार इस पिछड़े, गरीबी और अशिक्षा से ओत–प्रोत, पुरुषों द्वारा संचालित और नियंत्रित समाज में आज भी नारी किस तरह से घर, परिवार या समाज के द्वारा शोषित और पद–दलित रही है। उसका सम्यक निरूपण करते हुए लेखिका ने 'उर्वशी' नामक पात्र के माध्यम से एक विधवा नारी–उत्पीडन की दशा का हृदय विदारक चित्रण किया है। जिसका शोषण उसकी ससुराल पक्ष वाले लोगों ने नहीं बल्कि मायके पक्ष के लोग ही करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने सशक्त लेखनी के द्वारा समाज को इस बात से अवगत कराने का एक सफल प्रयास किया कि इस अंचल में आज भी नारी को किस तरह से दबाया जा रहा है और उनका शोषण किस हद तक किया जा रहा है। इसका वर्णन पुष्पा जी ने बहुत भली प्रकार से किया है। इस उपन्यास का संक्षिप्त कथानक कुछ इस प्रकार है कि 'उर्वशी' नामक एक सुन्दर कन्या राजगिरी गाँव के एक साधारण और गरीब परिवार की बेटी है। घर में पिता, माँ और भाई अजीत हैं। गरीबी के कारण पिताजी ने उर्वशी को नहीं पढ़ाया क्योंकि वह लड़की है और उसे दूसरे के घर जाना है। मात्र भाई को ही पढ़ाया गया क्योंकि आगे चल कर उसे घर का बोझ उठाना होगा। पढ़ाई पूरी करने के बाद वह वन विभाग में नौकरी करने लगता है। मीरा उर्वशी की अंतरंग सहेली है। वह एक दूसरे गाँव के प्रमुख बरजोरसिंह की पुत्री है। बरजोरसिंह स्वार्थी आदमी है। अपने हित के लिए कुछ भी करने में वे न हिचकते हैं और न ही उन्हें समाज की ही परवाह है। उदय और विजय मीरा के भाई हैं। विजय खेती देखता है और उदय बाहर का आना जाना। दोनों भाइयों ने आपस में काम बाँट लिया था। एक खेतों को जुतवा–सिंचवाकर पुख्ता करता तो दूसरा खाद और उन्नत बीज की व्यवस्था करता।

हमारे समाज में आज भी बेटी के पैदा होने से ही माँ – बाप दहेज के ऋणी होने की अनुभूति से ही चिंतित हो जाते हैं। दहेज देने में असमर्थ होने के कारण उर्वशी के पिता गाँव– गाँव घूमकर आते हैं, लेकिन उन्हें लड़का नही मिलता। इसके साथ ही उसके भाई का स्वभाव पहले से ही स्वार्थमय दिखाई देता है। वह अपनी बहन की शादी का खर्च उठाना नहीं चाहता था। बल्कि वह कुछ ऐसा रिश्ता चाहता था कि जिससे उसे ही कुछ आर्थिक मदद मिल जाए और उसको अपना धन खर्च न करना पड़े। इसी कारण वह अपनी बहन का रिश्ता चार बच्चों के पिता

के साथ तय कर देता है। बड़ा भाई होने के नाते उर्वशी के विवाह कराने का दायित्व अजीत पर ही था। परन्तु वह तो बड़ा ही चतुर था। किसी बूढ़े अमीर व्यक्ति से उर्वशी की शादी कराना ही उसकी इच्छा थी। जो उसे इस शादी के बदले में बहुत सारा धन प्रदान कर सके। परन्तु उसकी सहेली के नाना और उर्वशी के बड़े पिता का सोचना इसके विपरीत था। उन्होंने कर्ज इत्यादि लेकर उर्वशी की शादी बहुत धूम–धाम से कर दी थी। विवाहोपरांत उर्वशी का दाम्पत्य जीवन सुखपूर्ण था। लेकिन सर्वदमन की मृत्यु के पश्चात् उर्वशी की जिंदगी एक बार फिर अंधकार से भर जाती है और उसे अपने पुत्र देवेश के साथ वैधव्य भोगना पड़ता है।[262]

बेतवा की बेटी उर्वशी को ऐसा लगता है कि वह दुःख का भाग्य लेकर ही जन्मी थी जहाँ जन्म लिया वहाँ दरिद्रता का घोर साम्राज्य था। वह ऐसे घर में पैदा हुई थी जहाँ खाने के लिए भी लाले पड़ते थे लेकिन उर्वशी तो जैसे सुंदरता की मूर्ति ही थी। माता–पिता ने अजीत को ही पढ़ाया, क्योंकि वह घर का आधार स्तभ बन सके पर उर्वशी को शिक्षा से वंचित रखा गया क्योंकि लड़की तो पराये घर की अमानत थी। इस अंचल के लोग अपनी बेटियों को पढ़ाने के लिए सोचते भी नही हैं। यहाँ पर बेटा और बेटी के बीच भेद–भाव पूर्ण व्यवहार पूरी तरह से दृष्टिगत होता है। बैरागी उर्वशी के पति सर्वदमन का छोटा भाई है। जो उर्वशी से विवाह पूर्व प्रेम करता था। उर्वशी की शादी जब उसके बड़े भाई से हो जाती है तब वह सब कुछ छोड़ कर बैरागी बन जाता है। यद्यपि तब तक उसका विवाह भी हो जाता है परन्तु वह अपनी पत्नी से बिलकुल भी प्रेम नहीं करता है। तथापि सर्वदमन की मृत्यु के बाद वहाँ के बैरागी का जीवन दर्शन बदल जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा की अमृत वाणी का निम्न आलोक दर्शनीय है–दुर्गुणों के सम्मोहन को त्याग देना ही तो बैराग है। लालसा लोभवृत्ति और वासनामयी कामी इच्छाओं का दमन क्या साधुवृत्ति नहीं? अहं का नाश ही सच्चा सन्यास है। यह बैरागी ने तब जाना जब वे संसार को अनछुआ छोड़कर मृत्यु की ओर खिंचे चले जा रहे थे।

---

262 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 पृ० 168

मीरा चंदनपुर के प्रधान बरजोरसिंह की बेटी है तथा उर्वशी के गाँव में अपने मामा के घर पर रहती है क्योंकि उसकी माँ मर चुकी है जहाँ उसकी घनिष्टता उर्वशी से हो जाती है। जब उर्वशी के पति की असमय मृत्यु हो जाती है तब उसका भाई अजीत अपने निजी स्वार्थ वश उसे उसके ससुराल से अपने घर लिवा लाता है और इस क्रम में वह उर्वशी के ससुराल पक्ष के अग्रज पितातुल्य दाऊ पर भी लांछन लगाने से नहीं चूंकता है। अजीत को डाँग की लकड़ी चोरी–छुपे, बेचने–पकडने के अपराध में नौकरी से सस्पेंड कर दिया जाता है। अजीत उर्वशी को राजगिरी बुलाकर मीरा के पिता बरजोरसिंह के साथ शादी कराना चाहता था, ताकि उसे उनसे कुछ धन की प्राप्ति हो सके। जब उसने यह सुना तब उसके मन में भाई के इस कुकर्म के विरुद्ध विद्रोह करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। परन्तु वह असहाय, अशिक्षित और अबला नारी थी तब अपनी निराशा में वह आत्महत्या करने का प्रयास करती है और एक मल्लाह के द्वारा बचा भी ली जाती है। मैत्रेयी पुष्पा के शब्दांकन में– "वह बेतवा नदी के कगार पर पानी को देखती रही बोली ओ बेतवा माइया अब किसी पर आस विशवास नहीं, अपना माँ जाया भाई ही दुश्मन बन बैठा तो अब कहाँ ठौर। जहाँ कहीं गयी दो घड़ी चौन से न कट सकीं। प्रश्नों के लिए पल पल भारी। समेट माँ मेरे पाप – पुन्न।"[263] उर्वशी ने आत्महत्या करने के लिए नदी में छलाँग लगा दी। वहाँ आयी नाव के मल्लाह ने उसकी रक्षा की।

आज आवश्यकता है कि एक मूर्धन्य साहित्यकार के द्वारा इंगित किये गए विन्दुओं पर ध्यान दे कर समस्याओं को सुलझाने की। सुधी पाठकों यदि आप के वश में हो तो उपन्यास का पठन करने के उपरान्त आप अपने अपने स्तर से बाद इस अंचल की समस्या के समाधान तलाशने का कार्य करें। और यदि आप के वश में हो तो अपने–अपने प्रयासों से कुछ न कुछ उन्नति के प्रयत्न करें। क्यों कि मेरे विचार से यह उपन्यास मात्र एक मनगढ़ंत कथा न हो कर एक रपट और ऐतिहासिक दस्तावेज भी है। जो आप और हम जैसे पढ़े लिखे मनुष्यों की बात जोह रहा है कि हम आगे बढ़ कर इस अंचल के लोगों को सहारा दें ताकि वे भी देश

263 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 पृ० 56

की मुख्यधारा में जुड़ सकें और हो सकता है कि तब कोई अन्य उर्वशी इस क्षेत्र में पैदा नहीं होगी।

4.5 मैत्रेयी पुष्पा के समकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री–पात्र राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। साथ ही इनके स्त्री–पात्र अनेक ऐसे सांस्कृतिक अंधविश्वासों एवं धार्मिक सिद्धान्तों को चुनौती ही नहीं देते बल्कि इन खोखली मान्यताओं को तोड़ते भी हैं जो स्त्री के प्रति न्याय नहीं करती हैं।

मैत्रेयी जी द्वारा रचित उपन्यास 'चाक' में भी अनेक जटिल घटनाक्रमों के बीच प्रधान पद के लिए सारंग का पर्चा भरना तमाम दकियानूसी और भ्रष्ट ताकतों के विरूद्ध एक चुनौती के समान है। लेखिका इस जटिल यथार्थ के सम्पूर्ण बिम्ब में संभाल नयी दिशा, भविष्य की सकारात्मक शक्ति के नये संकेत के रूप में सारंग के चुनाव लड़ने के फैसले को प्रस्तुत करती है। यह एक ऐसी परिस्थिति है, जिसमें नकारात्मक यथार्थ को पलटने वाली शक्ति के रूप में सारंग आशा का केन्द्र बन जाती है। सारंग को प्रोत्साहित करने के लिए श्रीधर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे सारंग के राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं। "......... मैं चाहता हूँ। भँवर चाहता है, यह गाँव चाहता है, ओर चाहती है सारी औरतें। तुम्हारे लिए, तुम्हारे माथे पर ताज धरने की बात कोई सोच नहीं रहा। सिर्फ गाँव के लिए ...... प्रधानी नहीं; सेवकाई करोगी तुम।"[264]

आगे वे समझाते हुए कहते हैं :– "जब घर–परिवार में औरत का दखल हो सकता है, तो राजकाज में क्यों नहीं ? तुम पढ़ी–लिखी हो, खूब जानती हो, हमारे संविधान में औरत को बराबरी का दर्जा मिला है। तुम कब तक औरत के पत्नी होने की दुहाई देती रहोगी ? मैं निमित्त बनूँगा तुम्हारे खड़े होने का। ...... तुम्हं` प्रधान

---

264 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ० 400

बनना होगा– हर हालत में। ..... उठो तुम, तुम्हारी जैसी दृढ़ स्त्री का अनुसरण पूरी औरत जाति करेगी।''[265]

श्रीधर के उक्त संवादों के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा महिलाओं में राजनीतिक चेतना का प्रसार करना चाहती है और इसके साथ–साथ यह भी बताना चाहती है कि स्वत्व की रक्षा एवं अपने अधिकारों के लिए स्त्रियों का राजनीति में भाग लेना आवश्यक है। नहीं तो सारे कानून पुरूषों द्वारा बनाए जाएँगे, जो कि पुरूषों के हक में ही अधिक होंगे। हमारे समाज में राजनीति में जाने वाली स्त्रियों के विषय में लोगों की विचित्र धारणाएँ हैं। उन्हें लोग घर एवं परिवार के अयोग्य समझते हैं। चरित्र को भी संदेह की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन स्त्रियों को लोगों की परवाह किये बगैर अपने पर होने वाले अत्याचारों एवं अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए मैदान में उतरना होगा, नहीं तो कुछ भी होने वाला नहीं है। श्रीधर सारंग को साहस एवं हिम्मत दिलाते हुए कहते हैं –

''लोग क्या कहेंगे, क्या नहीं कहेंगे, इसकी चिन्ता है तो बन्द करो रेशम, गुलकन्दी और गुरूकुल वाली शकुंतला, शारदा के बारे में सोचना। विलाप करके क्या दिखाना चाहती हो ? यही कि तुम हाय–हाय करके मरी जा रही हसे उनके दर्द में ? तरस के टोकरे भर–भरकर आँगन में गाड़ लो, क्या मिलने वाला है ? सतियों के सिंहासन पर देवी की तरह पधराई जा सकती हो, लेकिन पुरूषों की बराबरी में जगह पाना........असंभव। 'बराबरी' शब्द खतरों की ईंटों से बना है, इसे हासिल करना ..... मेरे ख्याल में साहस दुनिया की अमूल्य चीज है।''[266]

सारंग इन खतरों से जुझने का साहस रखती है। वह सभी के लिए चुनौती बनकर उभरती है। गाँव के प्रधान अपने स्वार्थ के लिए रंजीत को मोहरा बनाते हैं, लेकिन सारंग पति का अंधानुकरण न कर पति के विरोध में खड़ी हो जाती है। इसी के साथ–साथ वह फत्ते सिंह, थान सिंह सभी को सोचने पर मजबूर कर देती है। फत्ते सिंह की स्थिति इन शब्दों में व्यक्त होती है :–

''यह मनहूसी! ये अँधियारे ऐसे लम्हें फत्तेसिंह प्रधान की जिन्दगी में आयंगे`, उन्होंने कल्पना न की थी। गजाधर के बेटे की बहू ने दबे पाँव हमला किया है।

---

265 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ० 400
266 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ० 401

उन पर! हर गैल–गली को कीलने वाले फत्ते सिंह प्रधान को इस साँपिन के बिल की खबर होती तो. ...... आग भरवा देते छेद में।''[267]

सारंग ने जब पर्चा भरा तो प्रधान को लगा कि जैसे सचमुच ही सारंग सिंहवाहिनी बनी उसकी छाती का खून पीने को तैयार खड़ी है। मौत और जिंदगी के बीच की यह घड़ी उनके लिए अत्यन्त दर्दनाक, खौफजदा और असहनीय हो रही है। जहाँ रंजीत प्रधान के सामने दबंग, चापलूस और डरपोक बनकर रहता है। उसकी बहादुरी सिर्फ अपनी पत्नी को पीटने तक है। सिर्फ अपनी पत्नी के सामने ही वे शेर है। लेकिन सारंग अपने पति की मार और गाली–गलौच को सहन करने के बावजूद भी अपने को कमजोर नही होने देती। बेशर्म औरत! हत्यारी। पति द्रोहिणी जैसे अभद्र शब्दों को सुनने के पश्चात् भी चुनाव लड़ती है। वह स्वतन्त्र व्यक्तित्व के निर्माण और विचारों के लिए परिवार एवं समाज से विद्रोह करती है। अपने अधिकारों तथा अपने अस्तित्व की माँग करती हुई नैतिक मूल्यों के लिए संघर्ष करती है। सारंग नैनी के व्यक्तित्त्व के संदर्भ में रेखा अवस्थी लिखती है :–

''अतरपुर के उस सीमाबद्ध जटिल कथा संदर्भ के बाद सारंग का चुनाव में पर्चा भरना, उसके बागी तेवर, विद्रोही व्यक्तित्त्व की एक उत्तेजनापूर्ण मिसाल बन जाता है। सारे गाँव में यही चर्चा है– 'रंजीत की बहू पर्चा भर आई है। खसम को तो हवा भी नहीं लगने दी।''[268]

प्रधान पद के लिए पति के स्थान पर सारंग स्वयं खड़ी होती है क्योंकि प्रधान फत्ते सिंह के राजनीतिक स्वार्थ को समझ चुकी है। वह जानती है कि राजनीतिक क्षेत्र में उतरे बगैर गुलकन्दी और रेशम जैसी औरतों को न्याय कभी नही मिल सकेगा। न ही उसकी लड़ाई सिर्फ उसकी अपनी है बल्कि पूरे देश की स्त्रियों की लड़ाई है। 'नयी नैतिकता की खोज' लेख में सारंग के इस संघर्ष का इस प्रकार विश्लेषण किया गया है।

''सारंग रंजीत का परित्याग नहीं करती– सिर्फ अपनी स्वाधीनता अर्जित करने का संघर्ष करती है। इसलिए उसका यह संघर्ष निजी संघर्ष नहीं है, बल्कि एक नयी नैतिकता की माँग है जिसके दायरे में पूरा गाँव और इस बहाने पूरा

---

267 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ० 407

268 रेखा अवस्थी, हंस, जुलाई, 1998, पृ. संख्या 92

समाज आ जाता है, जो उसके द्वारा प्रधान का चुनाव लड़ने के निर्णय से प्रकट होता है।''[269]

सारंग की तरह ही कसतूरी का संघर्ष भी निजी संघर्ष नहीं है, बल्कि पूरे समाज की स्त्रियों का संघर्ष है। वह भी पूरे समाज की स्त्रियों के हक में लड़ती है। 'कस्तुरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी एक अजीब, निरीह, निष्कवच, निश्छल, संकल्प– दृढ़ नारी का व्यक्तित्व लेकर उभरती है, उसकी लड़ाई दुहरी है, एक तो औरत होने की और दूसरी अपने अधिकारों के लिए। अपने अधिकारों के लिए वह धरने पर बैठती है, और यहाँ तक कि वह जेल भी जाती है, नहीं फिर भी कस्तूरी हिम्मत नहीं हारती। वह कुशल कार्यकर्ता की तरह महिलाओं का नेतृत्व भी करती है। कस्तूरी परिवार व समाज की परवाह न करते हुए नौकरी करती है और अपनी बेटी लेखिका मैत्रेयी का पालन पोषण करती है। कस्तूरी का व्यक्तित्व सुबोध बाबू के इन शब्दों में व्यक्त होता है :–

''मैत्रेयी तुम भाग्यवान हो। तुम्हारी माँ पर स्त्रियों का बड़ा भरोसा है। जो औरतें खुद नई दुनिया की ओर कभी नहीं जा सकती, कस्तूरी जैसी स्त्री के आग्रह और कहने सुनने में चलेगी। वे औरतें तो सपने में भी नहीं सोच सकतीं कि कोई कस्तूरी को उनसे दूर ले जा सकता है। माना कि वे महिलाएँ जाकर अपनी बोली बानी में कोई जिद– हठ नहीं कर सकतीं और न कस्तूरी की तरह खुद को मिटा पायेंगी, फिर भी इतना तो समझ लेगी कि उनकी विकास अधिकारी उनके लिए जेल गई है।''[270]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्त्रियों में राजनीतिक चेतना की लहर आ चुकी है और वह अन्य क्षेत्रों की तरह राजनीति में भी प्रवेश कर रही है। उपन्यासकार ने यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि राजनीति सहभागिता और भर्ती के कारण महिलाओं की परम्परागत भूमिका में जटिलता और व्यापकता आई है। जिससे महिलाओं के सम्मुख चुनौती भी प्रस्तुत हुई है। अभी तक राजनीतिक समाजीकरण के अभिकरणों तक महिलाओं की पहुँच कम थी तथा दूसरी ओर व्यक्तिगत सामाजिक और आर्थिक

---

269 सम्पादक, राजकिशोर, स्त्री–पुरुष, कुछ पुनर्विचार, पृ. संख्या 143

270 मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ. संख्या 319

कारकों ने उनकी राजनीतिक सहभागिता व अवरोधकों का कार्य किया है। अब यह महिलाओं पर निर्भर है कि वे सक्रिय सहभागिता के उपलब्ध साधनों का गम्भीरतापूर्वक प्रयोग करे और नई चुनौतीपूर्ण भूमिकाओं को स्वीकार कर अपने समाज और राष्ट्र के सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त करे।

4.6 मैत्रेयीपुष्पा और गाँधीवाद

'बेतवा बहती रही' मैत्रेयी पुष्पा का पहला उपन्यास है, जिनमें विन्ध्याँचल के पिछड़ी जातियों की कथा है। इस उपन्यास में विधवा युवती की कथा वेदना, और पुनर्विवाह को सम्मिलित किया गया है। अशिक्षा के गहरे अंधकार में उपन्यास की नायिका के ह्दस दावक कथा भारतीय ग्रामीण समाज की कथा बन गयी है। इस उपन्यास में पारिवारिक शोषण की भयावहता उघाड़ी गयी है, जिस परिवार में दो समय की रोटी जुटाना मुश्किल था, वह कहाँ से दहेज जुटाता है। यह रचना बेतवा नदी के के किनारें फैली निर्धन बस्तियों के संघर्ष,भूख और छटपटाहट की जीवन साक्ष्य है, शोषण अन्याय और विवशता की बेतवा आज भी बह रही है। उपन्यास की संवेदना का मूल धरातल स्त्री यातना है, यह रचना नारी केन्द्रित होने पर न पुरूष द्वेष को उभारती है, न नारीवाद का नारा बुलन्द करती है, परन्तु अंत तक लेखिका उर्वशी के दुःख से पाठक को जोडती है, इसलिये उसकी अकाल मृत्यु पाठक को झंकझोर कर रखती है। उपन्यास की कथा फ्लैश बैक से धीरे धीरे खुलकर सामने आती है। मीरा अपनी बाल सहेली और परिस्थितियों की मारी सौतेली माँ बनी उर्वशी की कहानी की पाठको के सम्मुख खोलती है। विधवा विवाह की समस्या को लेखिका ने उठाया है। उसने तो नारी के लिये यातना के द्वार खोल दिये है। आज इसी समस्या को सुलझाने के बहाने असंख्य लड़कियों का क्रय–विक्रय हो रहा है।

स्त्री आज भी विनिमय की चीज बन गयी है। वास्तव में आजादी नारियों तक पहुँचा ही नही है। उर्वशी ने जिस घर में जन्म लिया था वहाँ दरिद्रता का घोर साम्राज्य था। घर में खाने के लाले पड़े रहते थे। ज्यो–ज्यों उर्वशी बढती गयी उसका सौन्दर्य निखरता गया। कच्चे मटमैले घरौटे में उसका अपूर्व सौन्दर्य खिलता है।

वानी के शब्दों में लेखिका ''कैसी गुलाब के फूल सी मोड़ी है, मोहन सिंह की कहूँ रज–रनिवास में पैदा होती है।''[271]

उर्वशी की सुन्दरता ही उसका अभिशाप बन जाती है, उर्वशी के घर में जो जमा पूँजी थी। उसके भाई की नौकरी लगना भ्रष्टाचार का एक सुन्दर नमूना, उर्वशी की शादी एक दहेजवर से तय होती है। भाई ने उसमें कोई मदद नहीं की कहानी तब नया मोड़ लेती जब अजीत जंगल की लड़कियों को बेचने के आरोप में निलंबित हो जाता है। अन्त में अजीत अपराधिक प्रवृत्त का हो जाता है। उर्वशी के भाई अजीत का अन्त बहुत बुरा होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने उर्वशी के चरित्र सदैव उँचा उठाए रखा है। कम बोलने के बावजूद उसके मुख से जो सँवाद निकले है। उसे नारी चेतना की गूंज की रूप में देखा जा सकता है। यह बात अलग है कि भाई की गृहस्थी के लिये उर्वशी अपनी जिन्दगी कुर्बान कर दी। प्रेम वासना घृणा, और हिंसा के ताने–बाने से निर्मित यह उपन्यास आँचलिकता के तत्वों को भी लेपेटे है।

4.7 गाँव में सवर्णों की राजनीति

चाक उपन्यास में पुरुष समाज के बीच में महिलाओं के विशेष पहचान उभरती है। सम्पूर्ण उपन्यास में पुरूष पात्रों की अपेक्षा महिलाये बेहतर प्रदर्शन करती है। जिन बातों के लिये अभी तक महिलायें दोषी मानी जाती थी उपन्यास उनके पुरूषों को दोषी ठहराया गया है। संवेदना दृष्टि से इसे राजनैतिक उपन्यास नही कहा जा सकता पुरूष समाज के घिनौने स्वरूप का वर्णन इस उपन्यास में मिलता है। वह भयावह है। एक उपन्यास में कई उपन्यासों को मैत्रेयी जीने समेट लिया है। इस उपन्यास में प्रकारात्तर से कई कथायें चलती है। अवैध सम्बन्धों की समस्या, नामर्द के पत्नी की समस्या, प्रेम विवाह, विधवा माँ की समस्या, कुँवारी माता की समस्या, परिवार नियोजन की समस्या आदि कई समस्याओं को उठाकर उसका यथोचित निर्णय लेखिका ने प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास प्रारम्भ सांरग की बहन रेशमा के मौत से होता है। यह मौत तब और संवेदनशील हो जाता है, कि

---

271 'बेतवा बहती रही'(उपन्यास) –मैत्रेयी पुष्पा– किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 पृ0सं0–14

वह गर्भिणी थी। सांरग यह भी जान जाती है, कि इसमें डोरिया का हाथ है, जो गाँव में इस प्रकार कई घटनायें कर चुका है। ''इस गाँव के इतिहास में दर्ज दास्तानें बोलती है।– रस्सी के फंदे पर झूलती रूकमणी, कुँऐ में कूदने वाली रामदेई, करबान, नदी, में समाधिस्थ नारायणी...... ये बेबस औरते सीता मईया की तरह भूमि प्रदेश' कर अपने शील–सतीत्व की खातिर कुरबान हो गयी।''[272]

उपन्यास की केन्द्र बिन्दु सांरग है, जो एक बच्चे की माँ के रूप में प्रवेश करती है। वह अपने पति रंजीत से अधिक योग्य है, संस्कृत के श्लोकों को जानती है, और पूरे गॉव में सबसे ज्यादा पढ़ी लिखी है। गुरूकुल में पढ़ते समय ही, ऋतु संहार पढाने वाले अध्यापक ने उसे अपने बाहों में लिया था। येन, केन–प्रकारेण, बचने के बाद उसने वही निर्णय लिया था कि वह जीवन भर पुरूषों के अत्याचार का विरोध करेगी। लेखिका ने उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है।–

''चम्पई रंग, सुन्दर मुँह, दुबली, पतली, लड़कियों जैसी देह और चेहरे पर बच्चों जैसा भोला भाव। अठारह साल से ज्यादा नही लगती।''[273]

इस उपन्यास में राजनीति के अंग देखने को मिलते है। सांरग को चुनाव लड़ने के लिये श्रीधर मास्टर ने प्रेरित किया। वहाँ चार–चार उम्मीदवार खड़े होते है, श्रीधर ने चतुरानितिज्ञ की तरह उसकी योग्यता ओर दृढ़ संकल्प सबके समक्ष रखा और तब यह है, सारंग अपने पति के विरोध में खड़ी थी इसलिये उसे संकोच होता है। लेकिन तब वह सोचती ''जब घर परिवार मे औरत का दखल हो सकता है, तो राजकाज, मे क्यों नही? तुम पढ़ी लिखी हो खूब जानती हो, हमारे संविधान मे औरत को बराबरी का दर्जा मिला है। तुम कब तक औरत के पत्नी होने की दुहाई देती रहोगी?''[274]

सारंग के अतिरिक्त कुछ नारी पात्र है, जिनको सदैव याद रखना पड़ेगा। उनमें से एक है, कलावती चाची, जो सारंग की हितैषी है। इसी प्रकार पाचन्ना बीवी जिन्हें प्रभु की तरह दॉगा गया गया था और जिन्होंने पुरूषों असंवेदनशील को सहा

---

272 'चाक'(उपन्यास) –मैत्रेयी पुष्पा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004–पृ0सं0–7

273 वहीं, पृ0सं0–80

274 वहीं, पृ0सं0–400

था। एक पात्र और हैं जिसका नाम लौगश्री है, वह एक दबंग औरत है, और अपनी माँ को पीटती है। वास्तव में इस विराट उपन्यास में समस्यायें ही समस्याएँ है। विशेष रूप से प्रेम प्रसंग कुँवारी माता की समस्या पर कई उदाहरण जुटाए है। कुल मिलाकर चाक उपन्यास ऐसा उपन्यास है, जो बेवाकी से स्त्रियों के पक्ष में अपनी बात रखता है, और पुरूषों के छद्म को खोलकर रख देता है।

4.8 पंचायत व्यवस्था

'अल्मा कबूतरी' यथार्थ की नाटकीय कहानी जटिल है, जो पाठको को बेचैन करती है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास कदमबाई और अल्मा दो पात्रो के इर्दगिर्द, घूमती है। यह कथा इन दो पात्रो की होनें से इन्हें जान लेना आवश्यक कबूतरा जाति का सौन्दर्य वर्णन करने में दोनों स्थानों पर मैत्रेयी जी ने कंजूसी नही की। कबूतरा जाति के प्रति हमारे समाज में कैसी धारणा है इसका एक उदाहरण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। भारी गगरी जैसा पेट लेकर कदमबाई बस ने चढ़ना चाह रही थी कि बस में से आवाजें आने लगती है, कबूतरी है, कबूतरी! ''गाड़ी में बच्चा पैदा कर देगी। बच्चा साला रोएगा नही जेबे झाड़ेगा। अरे नही, नही सब ढोंग है। घाघरा खुलवाओ। पेट पर कपड़ा बॉध रखा होगा। बड़ी प्रपंचित औरतें होती है। ये।''[275]

उपन्यास में अल्मा और कदमबाई के अतिरिक्त याद रखने लायक एक दो स्त्री पात्र और दो तीन पुरूष पात्र हैं मैत्रेयी जितना नारी पात्रों की ओर ध्यान देती है, उतना पुरूष पात्रों की ओर नही। भूरी नामक एक नारी पात्र ऐसा है। जिसने अपने बेटो को पढ़ाने के लिये कई पुरूषों के नीचे सोना स्वीकार किया। पंचायत द्वारा उसे जल–परीक्षा का दण्ड दिया जाता है। उसने जब इनकार किया तो उसे चुपचाप नदी में फेंकने की योजना बनायी जाती है। गश्त सिपाहियों के कारण वह बच जाती है। ''पुलसियॉ! लहंगा उठाने के बदले जिंदगी दे गया।''[276]

---

275 'अल्मा कबूतरी'–मैत्रेयी पुष्पा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 – पृ0सं0–32

276 'वहीं पृ0सं0–76

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी ने अपराधी जाति के नारी–समाज की समस्याओं को विस्तार से चित्रित किया है। अंग्रेजो द्वारा अपराधी करार जातियों को नेहरू जी ने भले ही मुक्त किया हो परन्तु आज तक कंजर, सॉसी, नट,मदारी, पारदी, हाबूड़े, कबूतरे, आदि जनजातियों को लोग उसी नजर से देखते है। कबूतरों या तो जंगल में छिपे होते है या जेल मे। उनकी औरते शराब की भटिटयों पर होती है। या सभ्य समाज के पुरूषों के बिस्तर पर। महुआ और गुड़ की खातिर जंगल–जंगल भटकना पड़ता है। सारी क्रूरताओं को वे पानी की तरह पी जाते है। कबूतरे सोना चुराकर अपनी औरतो को नही देते कारण वे पुलिस की पकड़ में आएगी। गर्भवती कबूतरी पर तक लोगो का विश्वास नही। कबूतरों का रखैल बनाना जमींदारोकी शान थी, कदम को मंसाराम ने रखैल रखा था। इसलियें अपने खेतो पर उनके कबिले को बसने दिया जाता था। मंसाराम कदमबाई के पास रोज जाया करता था। फिर भी किसी कबूतरी को रखैल बनकर भी कोई सुख नहीं मिलता। मंसाराम द्वारा कदमबाई को किसी खास सहयोग का कोई उल्लेख नही है। कभी–कभी चोटी कर कदम बाई जैसे जीती है। अल्मा की व्यथा कबूतरियों की व्यथा है। 'अल्मा कबूतरी' कबूतरा लोगों की जिन्दगी का समाज शास्त्रीय अध्ययन है।

4.9 भारतीय संस्कृति एवं ग्रामीण जीवन

'त्रिया हठ' उपन्यास प्रकारान्तर से 'बेतवा' बहती रही' का परिवर्तित रूप है। यह एक प्रकार से बेतवा बहती रही का संस्करण है। इस उपन्यास में कई प्रकारान्तर से कई कथाएँ साथ चलती है। ग्रामीण स्त्री की जिन्दगी का शोक भरा उपहास किया गया है। किसी वृद्ध से किसी नवयुवती का विवाह आजकल कोई समस्या नही है, लेकिन लड़की बेचने का सिलसिला आज भी चल रहा है। पात्र की दृष्टि से यह उपन्यास सुन्दर बन पड़ा है। इसका कथानक पूरी तरह प्रेम प्रसंगो पर आधारित है। एक प्रसंग में दाऊ युधिष्ठिर बन उर्वशी का कन्यादान के लिये तैयार हो जाते है। विजय को दौरा पड़ने के कारण नर्स के रूप में उर्वशी बार –बार आती है और उसकी उत्तेजना को बढ़ा देती है।

मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में ''बार बार आकर उसने देखा है, उदय का रोम–भरा ताजा नहाया हुआ शरीर। खुली बाजुओं को नीचे केश–गुच्छों से सुसज्जित बगले।

नई तरह के कच्छानुमा अंडरवियर से झाँकते पोते और शिशन। क्या उसने अपनी आँखों इतना नियंत्रण हैं कि ऐसा कुछ देखे ही नहीं या वह देखने के लिये ही आती है।''[277]

यह भी नई कल्पना हैं जो उन दोनो में आकर्षण निर्माण करती है परन्तु अंत में खेतों में उसे घेरकर मारने के लिये गुंडे भेजना उदय की कौन सी शराफत थी? दोनो हम उम्र थे। अतः एक दूसरे को चाहना कोई बुरा तो नही था। उसने पिता को दोनों हम उम्र थे। अतः एक दूसरे को चाहना कोई बुरा तो नही था। उसने पिता को भी सुना दिया था कि अब उनकी अवस्था ऐसी रही कि वे उससे शादी करे और उसके बेटे को संभाले दोनों के बीच किसी नये आयाम को खोजती हुई वह ऐसे भूमिगत हो गयी कि किसी को पता ही नही चला खतरनाक मुजरिम की तरह उसकी खोज शुरू होती है। खेतो में जब वह नही मिली तो उसके बच्चे की आवाज़ में वित्ते रोता है। वह जैसे ही निकली लाठियों से मार गिराया जाता है। पलस्तर चढ़ा। दाऊ ने सेवा भी की पर वह बच नहीं पाती लोगो ने पता लगाया कि लठैत उदय के भेजे थे। कुछ ही दिनों बार उर्वशी ने इहलोक छोड़ दिया। बरजोर सिंह उसकी याद में बच्चों को लाई के लडडू बाटा करते थे।

सबमें सच को ज्यों का त्यों कहने की हिम्मत नहीं होती और उससे भी कहीं अधिक सच सुनने की। लेकिन मैत्रेयी पुष्पा एक ऐसी लेखिका हैं जिनमें सच को देखने की भी हिम्मत है और उसे बिना लाग–लपेट कहने की भी। एक स्त्री होकर उन्होंने ग्रामीण जीवन के उस जघन्य पहलू को दुनिया के सामने उद्घाटित किया जहां अच्छे अच्छे जाने से घबराते है।

4.10 नारी जीवन का आदर्श और ग्रामीण जीवन

अपने लेखन में मैत्रेयी जी ने स्त्री को अपने जीवन में, अपने विचारों में और अपनी सोच में बदलाव लाने की बात जोर देकर कही है, वे लिखती हैं कि मुझे स्त्री–जीवन की वह छवि पेश नहीं करनी है, जो मर्यादा, शील–शुचिता और इज्जत के नाम पर स्त्री की नकली तस्वीर है। इसके विपरीत वे चाहती हैं कि स्त्री अपनी महत्ता का एहसास कराए। अपने आपको उस कारे से बाहर निकाले, जिसमें पुरुष

277 'त्रिया हठ'(उपन्यास) –मैत्रेयी पुष्पा– पृ0सं0–148

के वर्चस्वादी समाज ने उसे घेरकर रखा हुआ है और उसकी सोच एवं भावनाओं को संकुचित किया हुआ है। वे चाहती हैं कि स्त्री को इसी संकुचन वाले घेरे को ही तो तोड़ना है, ताकि वह भी उड़ान भर सके और अपना योगदान देते हुए अपनी गाथा लिख सके।

मैत्रेयी जी की प्रमुख कृतियां हैं स्मृति दंश, चाक, अल्मा कबूतरी, कहैं ईसुरी फाग, बेतवा बहती रही, चिन्हार, इदन्नमम, गुनाह बेगुनाह, कस्तूरी कुण्डल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया, ललमनियाँ तथा अन्य कहानियां, त्रिया हठ, फैसला, सिस्टर, सेंध, अब फूल नहीं खिलते, बोझ, पगला गई है भागवती, छांह, तुम किसकी हो बिन्नी, लकीरें, अगनपाखी, खुली खिड़कियां आदि। उनके लेखन में देश का अत्यंत पिछड़ा अंचल बुंदेलखंड जीवंत हो उठता है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की नायिका ग्रामीण क्षेत्रों से होने के बावजूद भी सामाजिक चेतनाशील है जो विभिन्न अत्याचारों को सहते हुए हक के लिए लड़ती है। 'चाक' उपन्यास में जब रेशम के मर्यादा भंग करने के जुर्म में उसे जलाकर मार दिया जाता है तो सारंग द्वारा अपराधियों को सजा दिलाने के लिए आवाज उठाना उसकी सामाजिक चेतना का परिचायक है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने अपने लेख 'आकाश चाहने वाली लड़की के सवाल' में लिखा है–''मैत्रेयी पुष्पा जब पितृसत्तात्मक व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ रेशम (चाक) के बहाने विधवा के मानवीय अधिकारों की इकतरफा असफल लड़ाई की एक छोटी सी झलक देकर सारंग द्वारा उसे व्यापक स्तर पर एक निर्णायात्मक अंजाम देने की प्रक्रिया करती हैं तो एक साथ संतोष और आश्वस्त की अनुभूति होती है।''[278]

सवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति ग्रामीण क्षेत्रों तक भी पहुंची है। सिर्फ शहरी अथवा शिक्षित स्त्रियां ही नहीं अपितु ग्रामीण वर्ग की स्त्रियां भी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गई है तथा अन्याय के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करती है। अल्मा कबूतरी उपन्यास में पुलिस के द्वारा कबूतरी के पति को मार दिया जाता है जबकि वह बेकसूर होता है, इस पर कबूतरी आक्रोश में भर जाती है और कसम खाती है– ''पति विरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। मैं अपने मर्द की

---

278 मैत्रेयी पुष्पा चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ.–121

ब्याहता खुद को तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा–लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दो के नीचे से गुजरना पड़े।''[279] अतैव हम मान सकते है कि पुष्पा जी के उपन्यासों की नायिकाएं चेतना सम्पन्न है तथा अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाकर अपनी चेतना का परिचय देती है। अपने बेटे रामसिंह को पढ़ाकर उच्च अधिकारी बनाने की सोच रखने वाली भूरी सामाजिक चेतना सम्पन्न स्त्री की आवाज होती है।

4.11 ग्रामीण जीवन ओर शिक्षा

समाज में रहते हुए मनुष्य अनुभव और अनौपचारिक पद्धति से शिक्षा ग्रहण करता है, परन्तु औपचारिक शिक्षा के माध्यम से मानव सभ्यता, संस्कारों तथा जीवीकोपार्जन साधनों को प्राप्त करता है। अच्छाई–बुराई को पहचानकर सच्चाई के मार्ग पर जाने की कोशिश करता है। संघर्षमय जीवन से सहजता से रास्ता निकाल सकता है अर्थात् सर्वांगिण व्यक्तित्व विकास का साधन 'शिक्षा' है।

'शिक्षा' मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में रहते हुए उसमें भावात्मक एकता, सहयोग, सहानुभूति, नैतिकता जैसे सद्गुणों का विकास होता है इसलिए डॉ. नीता पांढर पांडे जी कहती हैं–

''जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है।''[280] बनते–बिगड़ते गाँवों की छटपटाहट मैत्रेयी का साहित्य है। जिन्हें गाँवों में जल, शिक्षा, बिजली जैसी प्राथमिक सुविधाएँ आज भी नहीं पहुँची है और जहाँ वह सुविधाएँ प्राप्त करा दी जाती है। वह गाँव की राजनीति में बीच में ही हड़प ली जाती है। ऐसी स्थिति में जीने वाले गाँवों का चित्रण 'इदन्नमम' चाक, अल्मा कबूतरी उपन्यासों में यथार्थता से स्पष्ट होता है। तो 'विजन' में मैत्रेयी जी पढ़े–लिखे के संसार में भी स्वार्थथता से इन्सानियत के कलंक लगाने का व्यापार चलता है। इसका यथार्थ चित्रण करते हुए भारतीय समाज शिक्षा के अभाव में आज भी यहाँ की जनता आजादी का अर्थ

---

279 राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दूबे (संपादक): पितृसत्ता के नये (स्त्री और भूमंडलीकरण), नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2003 ई. पृ. 140

280 मैत्रेयी पुष्पा चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ.–121

समझ नहीं पाई है। आजादी का आनन्द देना हो तो शिक्षा का प्रचार–प्रसार आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखकर ही मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में शिक्षा समस्याओं पर विचार प्रस्तुत किये हैं।

'इदन्नमम' की अल्पशिक्षित 'मंदा' अपने गाँव में परिवर्तन लाने का संकल्प उठाती है और सदियों से प्राथमिक सुविधाएँ आरोग्य, जल, बिजली, शिक्षा जैसी सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है।

''सो जागो रे जागो चेतो रे चेतो। छोटे–बड़े नन्हें–मुन्ने, बूढ़े–पुराने, नये जवानों के अलावा ढ़ोर–चौंपें, परेवा–पंछी, नदी–ताल, पेड़–रूख, हवा–पानी यहाँ तक की दसों दिशाओं को जगाना होगा। बचने–बचाने को जूझना होगा। अमीर–गरीब, शत्रु–मित्र सब को शामिल होना होगा इस यज्ञ में। समय पड़े तो समिधा–सामग्री भी बनना होगा। बात होम की है। बात आन्दोलन की है।''[281]

अल्पशिक्षित होते हुए भी मंदा ने गाँव वालों पर हो रहे शोषण के लिए संघर्ष की आवाज उठाई और सारी सुविधाओं के लिए संघर्षशील रही। 'इदन्नमम' में शिक्षा समस्या पर विचार रखते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने सोनपुरा, गोती जैसे गाँवों के माध्यम से शिक्षा की असुविधा और समस्याओं पर दृष्टि डाली है, साथ ही भृगुदेव के माध्यम से दलित शिक्षा समस्याएँ प्रस्तुत की है। 'मकरंद' के इलाहाबाद में डॉक्टरी पढ़ते समय आये अनुभव के माध्यम से शहरी शिक्षा समस्याओं पर विचार रखते हुए, शिक्षा क्षेत्र में फैली कुरीतियों पर प्रकाश डाला है। 'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी जी ने स्वतन्त्रता के बाद आधुनिकता के होड़ में लगे ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय गाँवों में स्थित रूढ़ी परम्परा, अन्धविश्वास, नारी शोषण, अवैध यौन सम्बन्ध, जातीय एवं साम्प्रदायिक तनाव, किसान से मजदूर बने लोगों का जीवन, धार्मिक साम्प्रदायिक भेदभाव, डाकुओं का आतंक, शिक्षा की समस्याएँ वहाँ के लोगों की भाषा, संस्कृति का यथार्थ चित्रण 'इदन्नमम' की कथावस्तु है, जिसमें एक अल्पशिक्षित नारी 'मंदा' परिवर्तन का मेरूदण्ड उठाती है और गाँव में क्रान्ति लाती है।

---

281 मैत्रेयी पुष्पा चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ.–121

मैत्रेयी जी का 'चाक' उपन्यास तो 'शिक्षा' विषय पर ही आधारित है। आज के ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा व्यवस्था का यथार्थ चित्रण 'चाक' उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास में शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार का यथार्थ अंकन है। गाँव के हैडमास्टर थाना सिंह से लेकर गाँव के प्रधान फत्तेसिंह तक सब लोग भ्रष्टाचार में शामिल हैं। हेडमास्टर थाना सिंह खुद स्कूल में पन्द्रह–पन्द्रह दिन नहीं जाता है और अपने बदले प्रधान फत्ते सिंह का बेटा हुकमा को तीन सौ रूपये महीना पढ़ाने के लिए कहता है। तथा थाना सिंह बच्चों को फेल करके ट्यूशन लेनी की तरकीब निकालकर अनपढ़ गाँव वालों को फंसाता रहता है। उनके विरूद्ध जाने वाले मास्टर को आफीम खाकर स्कूल में सो जाने का झूठा इल्जाम लगाकर उसका तबादला करा देते हैं। इस तरह भ्रष्टाचार के माध्यम से फत्ते सिंह प्रधान और थाना सिंह मास्टर मिली भगत करते हुए पैसा कमाते रहते हैं। फिर गाँव में एक नये मास्टर श्रीधर प्रजापति नियुक्त होते हैं। वे नेक, ईमानदार व भ्रष्टाचार का विरोध करने वाले हैं। बच्चों के जीवन को शिक्षा के माध्यम से सही आकार देना ही अपना धर्म समझते हैं। लेकिन गाँव में आए नये मास्टर श्रीधर को अपनी तरकीब बताते हुए थाना सिंह कहता है :–

''मास्टर के हाथों में कुबेर का खजाना नहीं होता, सृष्टि का खजाना होता है, अब की बार छमाही इम्तहान में आधे से ज्यादा बालक फेल कर दो, सालाना में दूसरे आधे .... म्हातारी बाप भागे–भागे आएँगे तुम्हारे पास और ट्यूशन के लिए गिड़–गिडाएँगें। यह कोई इण्टर कॉलेज नहीं कि हर बच्चा ट्यूशन की नसैनी चढ़े बिना अगली कक्षा में चढ़ जाता है। यहाँ तो हमें ही युक्ति सोचनी पड़ेगी। सो सोच ली तरकीब। मनमाने पैसे माँग लेना। थोड़ा नामालूमासा कमीशन मेरा।''[282]

इस तरह अज्ञानी गाँव वालों का फायदा उठाते हुए पैसा कमाने की तरकीब बताते हुए थाना सिहं अपने साथ–साथ श्रीधर मास्टर को भी भ्रष्टाचार के लिए प्रेरित करता है। लेकिन श्रीधर ईमानदार आदमी है। वह इनकी बनाई तरकीबों में साथ नहीं देता और दस्तखत करने से मना कर देता है। पढ़ी–लिखी सारंग ईमानदार श्रीधर मास्टर की सहायता से गाँव में परिवर्तन लाना चाहती है। दोनों

---

282 मैत्रेयी पुष्पा चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ.–132

मिलकर गाँव की गन्दी राजनीति और शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार को मिटाने का प्रयास करते हैं। इसी परिवर्तन के कारण इस उपन्यास का नाम 'चाक' है। जिसे घुमाने का कार्य सारंग और श्रीधर जैसे लोग कोशिश कर रहे हैं।

4.12 ग्रामीण जीवन का रहन–सहन और स्वास्थ्य व्यवस्था

मैत्रेयी जी का 'चाक' उपन्यास तो एक ऐसा सिक्का है, जिसमें भारत देश के ग्रामीण जीवन का एक बाजू पर राजनीतिक चित्र है, तो दूसरी बाजू पर ग्रामीण जीवन के शिक्षा क्षेत्र का चित्रण है। जिसके माध्यम से ब्रज प्रदेश के ग्रामीण इलाकों के राजनीतिक और शैक्षिक वातावरण से पाठक परिचित हो जाता है।

मैत्रेयी जी ने 'चाक' उपन्यास में भारतीय समाज के शिक्षा व्यवस्था में फैले राजनीति और भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण करने के साथ–साथ समाधान ढूँढ़ते हुए नये अध्यापकों को भ्रष्टाचार का विरोध करते हुए दिखाया है। जिसका एक उदाहरण श्रीधर मास्टर है, जिन्होंने मेहनत और अपनी ईमानदारी से भ्रष्टाचार का विरोध किया है।

आज भी भारत में जाति प्रथा का कठोरता से पालन होता दिखाई देता है। दलितों के विकास का माध्यम शिक्षा का अधिकार देने के लिए यहाँ का उच्च वर्ग आज भी तैयार नहीं है। आज भी भारतीय समाज में जाति की श्रेष्ठता के कारण जातियों में संकीर्ण भावना रहने के कारण उच्च जाति के लोग दलित समाज के लोगों को शिक्षा का अधिकार प्रदान नहीं करना चाहते। शिक्षा लेने वाले दलितों पर अपनी रूढ़िवादी मानसिकता के कारण कई प्रकार के अत्याचार करते हैं। ये जातियाँ अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए किस प्रकार संघर्ष कर रही हैं। इसका दस्तावेज मैत्रेयी जी द्वारा रचित 'अल्मा बकूतरी' उपन्यास में वर्णित है, जिसमें कदमा बाई के पुत्र राणा को आदिवासी अपराधी जाति का होने के कारण शिक्षा ग्रहण करते समय उच्च वर्णिय लोगों के अन्याय अत्याचार का शिकार होना पड़ता है। स्वतन्त्रता के बाद भी आज इन जातियों को मनुष्यत्व के अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं। आज भी ये गाँव से बाहर बस्ती बनाकर जीते हैं। कज्जा लोगों की तरह जीवन जीने की हरकत भी की तो उन्हें एक ओर फिर पटक दिया जाता है। कबूतरा जाति की जिन्दगी के बारे में मैत्रेयी पुष्पा जी कहती हैं :–

''हमारा जो समाज है वह एक ही समाज नहीं है, उसमें टुकड़े–टुकड़े हैं। उसका ही एक टुकड़ा है अपराधी जनजाति समाज का, टुकड़ा नहीं, वह कुचला हुआ समाज है। वह ऐसा टुकड़ा है जिसके पास अपना कुछ नहीं है, न खेत, न घर, न मजदूरी। उसके पुरूष के पास जब कुछ नहीं है तो वे चोरी करते हैं, चोरी उनका पेशा है। सभ्य समाज के लोग अपने अपराधियों की जगह उनका उपयोग करते हैं। यह उनकी नियति है कि वे दूसरे अपराधियों की जगह जेल में रहें। वे कहते हैं, चोरी हमारा पेशा है, बलकतरी हमारा पेशा है, गाय–भैसं चुराना हमारा पेशा है और स्टार्टर चुराना हमारा पेशा है, तो ऐसे लोग या तो जेल जाते हैं या जंगल में छिप जाते हैं। उनकी औरतें रह जाती हैं। जिनके पास शराब बेचने के अलावा कुछ नहीं रह जाता। गाँव में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता। मुर्गियाँ, कलंदर, कबूतरा वगैरह को गाँव में घुसने नहीं दिया जाता। उनके रास्ते भी अलग होते हैं। झाड़–झंखाडों में होते हुए कहीं पहुँचते हैं। शराब बनाने की सामग्री भी छिपाकर लाते हैं। उनके लिए सड़कें भी नहीं हैं और सुविधाएँ भी नहीं है, उनके बच्चे स्कूलों में नहीं पढ़ सकते। औरतें अगर खेतों में निकलती है तो लोग उनका शरीर देखते हैं। किसान कहते हैं कि पहले इधर चल तो औरत कहती है, चल, पहले इधर ही चल। उसे यह सब करना होता है वरना उसके बच्चे ओर घर वाले भूखे मर जाएँगें।''[283]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मैत्रेयी मात्र निजी जीवन से ही प्रेरित नहीं थी वरन् अपने आस–पास के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भावात्मक, धार्मिक जाति व्यवस्था यहाँ तक कि पितृसत्तात्मक समाज में नारी की स्थिति के प्रति जागरूक थी जिसका परिणाम उनके कथा–साहित्य की मार्मिक संवेदना है। यदि संवेदना न हो तो साहित्य कागज के फूल की तरह सुगंधहीन प्रतीत होता है। उनका साहित्य मिट्टी की सौंधी सुगंन्ध, भावों के प्रवाह तथा अभिव्यक्ति की कुशलता के कारण उन्हें एक सफल रचनाकार बनाता है।

(ख) मैत्रेयीपुष्पा के कहानियों में ग्रामीण जीवन का आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति–

---

283 मैत्रेयी पुष्पा, मेरे साक्षात्कार, संयोजिका – विज्ञान भूषण, पृष्ठ संख्या 44

मैत्रेयी पुष्पा का लेखक काल सन् 1990 से ही आरम्भ हो जाता है जबकि उनका जन्म सन् 1944 में हुआ था। इस सन्दर्भ में उनका मानना है, उम्र का एक मोड़ मुड़ जाने के बाद लेखन में आई है। समय का हिसाब तो मेरे पास नहीं है, हाँ अवश्य जानती हूँ कि इतने समय तक कड़ुए मीठे अनुभवों से गुजरकर कितना कुछ समेटती रही, जोड़ती रही, पचाती रही। इसी सबके चलते, मन में एक ठोस धरातल बन गया। उचित–अनुचित सही–गलत, नैतिक–अनैतिक, पाप–पुण्य की नियमबद्ध परिभाषाओं का थोथापन सूप के आगे तिनकों–सा उड़ने लगा।''[284] उनके साहित्य में एक तरह से स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक के परिवेश का समाविष्ट है। पुरूष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री की दमघोटू स्थिति तथा आजादी के पश्चात ग्रामीण जन–जीवन मेंआया परिवर्तन और प्रतिरोध शक्तियों का संघर्ष अधिक रहा है। जिसे वह न्याय अन्याय का संघर्ष मानती है। परिणामतः साहित्य का प्रयोजन न्याय को बल देना तथा अन्याय का विरोध करना है। युगीन परिवेश और लेखकीय प्रतिकीय प्रतिबद्धता के सन्दर्भ में कहा जा सकता है। युगीन परिवेश और लेखकीय प्रतिकीय प्रतिबद्धता के सन्दर्भ में कहा जा सकता है, कि जहाँ देश के जीवन मरण का संग्राम चल रहा हो, समाज के भीतर न्याय और दुःशील के भीतर महाभारत चल रहा हो, वहाँ सत्य के पीठ फेर के शब्दों के घरौंदें बनाते बैठता साहित्यकार की स्वाधीनता नहीं, अपितु मृत्यु का मार्ग है। औद्योगिक प्रगति और पूंजीवाद व्यवस्था के विकास के साथ शहर बनते और बढ़ते गए। बेकारों तथा निर्धनों का भीड़ शहर की ओर बढ़ने लगा। पारम्परिक संयुक्त परिवार टूटने लगा। एकल परिवार को लोग ज्यादा महत्व देने लगे। समाज के संतुलन व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा। इन सभी सन्दर्भों एवं प्रसंगों का विवेचन मैत्रेयी के कथा साहित्य में देखने को मिलता है।

वर्तमान भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति न केवल वर्ग में बँटींहै बल्कि वह कई–कई जात–पात, आर्थिक श्रेणियों और श्रमिक रूपों में विभक्त है। प्रसंगानुकूल राजेन्द्र यादव के अनुसार जिस तरह बंगाल के आदिवासियों की जंगल कथाएँ लेकर महाश्वेता देवी ने लगभग तहलका मचा दिया था। ''............. छोटे रूप में

284 मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार (मैं सोचती हूँ कि....), आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1991, पृ0सं0 143

यही स्थिति मैत्रेयी पुष्पा के कथा लेखन की है। निश्चित ही मैत्रेयी के लेखन में बौद्धिक तेज, राजनैतिक आक्रामकता और न्याय संघर्ष की अति परिचित पक्षधर घोषणा नहीं है, महानगरों से हटकर खेत–खलिहानों में निरन्तर चलने वाली लड़ाइयाँ और उनके बीच जागरूक होती नारी के अघोषित विद्रोह की कहानियाँ, हिन्दी के जनाने लेखन और स्त्री के बौद्धिक विमर्शो के बीच उसी तरह ताजगी देती हैं जैसी कभी रेणु ने दी थी। जैसा कि मैंने कहा, वे नारी चेतना के व्यक्तित्व निर्माण की नही, सामंती अमानवीयताओं और उभरती लोकतांत्रिक स्थितियों के बीच सहज नारी आकांक्षाओं की ऐसी कहानियाँ हैं जहाँ संघर्ष और 'विद्रोह' शब्द बाहर से थोपे हुए, लगते हैं क्योंकि वहाँ वे सिर्फ जीने की जिद और दी गई नियति के अस्वीकार की संकल्प–कथाओं का रूप लेती हैं।.......सेक्स, बलात्कार भी वहाँ उसी जीवन प्रणाली का हिस्सा होकर आता है। वे नारी के अपने अस्तित्व से अस्मिता तक पहुँचने वाली कहानियाँ हैं.............बेबाक और बेलाग।''[285]

मैत्रेयी का सामाजिक परिवेश ऊंचे–नीचे, जात–पांत, भेद–अस्पृश्यता और आर्थिक विडंबनाओं से ग्रस्त रहा है। उनका कथा साहित्य मुख्यतः ग्रामीण जन–जीवन की विवशता और पस्त हिम्मत को बतलाता है। पर साथ ही साथ स्त्री वर्ग की पराधीनता और पशुवत दीन–हीन स्थिति को भी दर्शाता है। कहा जाता है, व्यक्ति और समाज एक–दूसरे पर आश्रित है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, तथा वह अपनी समस्त् आवश्यकताऐं की पूर्ति समाज में ही रहकर करता है। समाज में होने वाली विभिन्न घटनाऐं, परिस्थितियां उसको युगानुरूप प्रभावित करती रहती है। समाज को विकसित करना हीं मनुष्य का लक्ष्य होता है। वह अपने कर्तव्य–कर्मो के द्वारा समाज के विकास में योगदान देता हैं तथा उससे लाभान्वित भी होता है। समाज में होने वाली विभिन्न घटनाओं, कार्यो में उसकी महत्ती भूमिका होती हैं। मैत्रेयीपुष्पा द्वारा अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन का आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर प्रभावपूर्ण विश्लेषण किया है।

4.1 मैत्रेयीपुष्पा के समय आर्थिक परिस्थितियाँ

---

285 हंस पत्रिका, जुलाई, 1998

मैत्रेयी पुष्पा के कहानियों में आर्थिक संघर्ष का भी विवेचन किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में मानवीय मूल्यों का विघटन बहुत तीव्र गति से हुआ। समाज में धन, संपत्ति का महत्व बढता गया। भौतिक सुखों को किसी भी कीमत पर खरीदने के लिए मनुष्य मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करने लगा। यहीं से उसका पतन प्रारंभ हुआ। इसी क्रम में उपभोक्तावादी संस्कृति का उदय हुआ। आर्थिक दबाव और विषमता का प्रभाव स्त्री पर अधिकाधिक होता गया। उसके कार्य क्षेत्र एवं जीवन यापन की पद्धति में फर्क आया जिसका परिणाम जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई देता है। खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्र की स्त्री का आर्थिक विषमता के कारण अधिकाधिक शोषण होता गया है। अशिक्षित, विधवा तथा वृद्ध स्त्री अपने परिवार पर आर्थिक विपन्नता के कारण अधिक आश्रित रही है। इसलिए उसका शोषण भी अधिकाधिक होता गया है। मैत्रेयी जी की कहानियों में आर्थिक समस्या का चित्रण किया गया है–

'रिजक' कहानी में लेखिका ने आर्थिक समस्या और उससे उपजी त्रासदी का चित्रण किया है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है सरकारी नीतियाँ और उसका फायदा लेने वाले निम्नवर्ग के लोग। सरकार निम्न जातियों के लिए आरक्षण तथा सुख–सुविधाओं को उपलब्ध करा रही है। परन्तु इन सुविधाओं का उपयोग लेते–लेते निम्न जातियाँ अपने अधिकारों के अतिरिक्त बातें करके भूख, हड़ताल, जुलूस, नारेबाजी करके काम के प्रति लापरवाह तथा नकारा बनती जा रही है, तथा नेता गिरी करके समाज में अशांति फैलाने का काम कर रही हैं। यह कहानी की मुख्य समस्या है। कहानी की नायिका लल्लन का पति आसाराम अपने अधिकारों की बात करते हुए कहता है। "हमारी जनीमान से बच्चा जनाने घर–घर नहीं ए जाएंगी। नाल नहीं काटेंगी। बसोट जाती है तो क्या हम गंदा काम करेंगे? गंदगी उगने को पैदा हुए है? वैसे भी जमाना बदल रहा है। अब हमारी जाति वालों की बात पहले सुनी जाएगी। हम सरकार पर दबाव बनाएंगे। नौकरी माँगेंगे और मिलेगी।"[286] अधिकारों की बात करने वाले कर्तव्य से विमुख हो गये इसलिये काम के अभाव में रोजी–राटी तथा भुख का सामना करना पड़ता है। लल्लन गाँव में दाई

---

286 मैत्रेयी पुष्पा–ललमनियाँ (रिजक), किताबघर प्रकाशन, 1996 पृ0सं0 76

का काम करती है। पति के नेतागिरी और भाषणबाजी के कारण लल्लन के बच्चे तथा पूरा परिवार भूख से लड़ रहा है।

लल्लन समझदार स्त्री है। जानती है भूख के सामने इंसान न छोटा होता है न बड़ा। वह बिरादरी के सारे फायदे तोड़ कर मोदी की बहू की डिलेवरी करने चली जाती है। लल्लन की त्रासदी वर्गगत हैं आन्दोलन और नारों से आर्थिक समस्या का समाधान नहीं होता इस बात को प्रभावशाली कथ्य के माध्यम से, लेकिन बताने का प्रयास किया है। कर्तव्य से विमुख होने वाले मनुष्य कभी सुखी नहीं रह सकते। काम न कोई छोटा होता है, न बड़ा। अपने काम के प्रति निष्ठा रखने की मानवता का पहला कर्तव्य है। 'अपने 'रिजक' अपने पेशे से बेईमानी करना अमानवीयता है' यह संदेश कहानी में की सास के माध्यम से लेखिका ने दिया है। इस कहानी में मनुष्य जीवन का ऊँचा आदर्श है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'सकर के बीच' में भी आर्थिक संघर्ष का विवेचन किया गया है गिरिराज गाँव के अभावों का मारा ऐसा युवक है, जो घर की परिस्थितियों में घूट रहा है। फिर भी शहर में रहकर जी–तोड़ परिश्रम कर, ट्यूशन पढ़ा कर अपनी पढ़ाई करता है। इसी बीच माँ के गुजर जाने से पिता भी टूट जाते हैं और माँ के हाथों मिलने वाला आर्थिक संबल भी समाप्त हो जाता है। गाँव जाने पर भाई–भाभी की उपेक्षा और पिता की दयनीयता मन में टीस भर देती है। ऐसी परिस्थितियों में हेमन्ती ही उसका सम्बल बनती है। उसकी अनकही जबान को समझने वाली हेमन्ती। पर पिता के विरोध और तबादले के कारण उसके संबंध दूर हो जाते हैं।

भाई, फूफा तथा अन्य लोग अपने–अपने फायदे के लिये उनके नाम को भुनाते रहे। कभी उनसे, कभी उनका नाम ले दूसरों से–''चापलूसी और स्वार्थमय प्रवंचना के घने जंगल उग गये। उस बियाबान में गिरिराज अकेले थे। उनके नाम के झंडे के नीचे नाते–रिश्तेदारों तथा उनके सतोदरों ने ऐसा प्राचीर खड़ा कर दिया, जिसमें गिरिराज की घुटी चीख गूँजती रही।''[287]

'ललमनियाँ' कहानी की मौहरों की मां आर्थिक दृष्टि से इतनी विपन्न है कि

---

287 मैत्रेयी पुष्पा–चिन्हार आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, 1991–पृ0सं0 119

खेतों–बैलों के अभाव में अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए ललमनियाँ पेश करती है। पति पेट की बिमारी से ग्रस्त था, इसलिए उससे भी सहायता न मिलतीं उनकी आर्थिक विपन्नता का बड़ा ही मार्मिक चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने मौहरों के पिता की मृत्यु के अवसर पर इस तरह खीचा है। यथा ''जिस दिन पिता मरे थे। बुरी घड़ी थी। अम्मा की आंखो से आंसुओं से ज्यादा भूख से बिलखते अपने छोटे–छोटे बच्चों को देखकर लाचारी बरत रही थी। उन्हें याद था कि आज के दिन ललमनियाँ दिखाने जाना था सिमरधरी गांव में। लेकिन घर में लाश धरी हो तो........ आने–जाने वालों के सामने बच्चों के पेट में कुलबुलाती आंतों को मसककर शोक दर्शाना जरूरी है। अम्मा इस रूढ़ि–रिवाज को नहीं तोड़ पाई। उसके कान में बोली, ''बेटी, तू चुपके से ललमनियाँ कर आ। परोसा मिलेगा सो उसी परसाद के संग कई दिनों तक पानी पीते रहेंगे। हमारे यहाँ रोज–रोज खाना भी कौन धरने आएगा?''[288] हमारा समाज स्त्री से यह उम्मीद तो करता है कि पति की मृत्यु पर वह शोक प्रकट करें लेकिन उसकी आर्थिक विषमता को कोई नहीं बांटता। घर में पति की लाश होते हुए भी मौहरों की मां अपने बच्चों की भूख का खयाल था।

ज्यादातर विधवा, निर्धन, निम्न जाति–वर्ग की स्त्री का ही आर्थिक शोषण होता है। आर्थिक विपन्नता स्त्री को दयनीय तथा अबला बना डालती है। मात्र स्वावलंबन के अभाव के कारण वह दूसरों के हाथों की कठपुतली बनती है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानियों के माध्यम से आर्थिक विषमता के तहत समाज द्वारा सताई स्त्री का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

मैत्रेयी पुष्पा इन कहानियों में नारी को हकों के प्रति सजग होने का इशारा करती हैं। स्वयं निर्णय क्षमता, आत्म–सम्मान, स्वयं अस्तित्व की पहचान बनाने में नारी को प्रेरित किया है। जीवन में शिक्षा का महत्व प्रतिपादित करते हुए हर नारी को शिक्षा प्राप्त करनी होगी और आत्मनिर्भर होकर जमाने के सामने अपने कर्तव्य दिखाने होंगे ऐसा करते हुए आगे अपने विचार रखती है कि, नारी का जीवन चैतन्यमय हो इस तरह के प्रयत्न नारी को स्वयं करने होंगे। राजनीति में जाकर सिर्फ निर्णयों पर नहीं चलना चाहिए स्वयं का रास्ता नारी को बनाना होगा। स्त्री में

---

288 मैत्रेयी पुष्पा–ललमनियाँ (ललमनियाँ), पृ0सं0 143

मानवतावादी विचार विद्यमान है। अपेक्षा की रमिया को ले लीजिए या फिर रिजक की लल्लन ले लीजिए सब बंधन तोड़कर वे कार्य करती है। दैहिक स्तर पर नहीं आत्मिक स्तर पर विकसित करने के लिए नारी को रूढ़ि–परंपराओं से, अंधविश्वासों से बाहर आकर, आत्मा–परमात्मा की खोज से बाहर निकलकर सत्यवादी विचारों का पक्ष लेना होगा। इस प्रकार का विवेचन कहानियों में आया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मैत्रेयी मात्र निजी जीवन से ही प्रेरित नहीं थी वरन् अपने आस–पास के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भावात्मक, धार्मिक जाति व्यवस्था यहाँ तक कि पितृसत्तात्मक समाज में नारी की स्थिति के प्रति जागरूक थी जिसका परिणाम उनके कथा–साहित्य की मार्मिक संवेदना है। यदि संवेदना न हो तो साहित्य कागज के फूल की तरह सुगंधहीन प्रतीत होता है। उनका साहित्य मिट्टी की सौंधी सुगंन्ध, भावों के प्रवाह तथा अभिव्यक्ति की कुशलता के कारण उन्हें एक सफल रचनाकार बनाता है।

4.2 शोषण में सहायक सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'सकर के बीच' में भी आर्थिक संघर्ष का विवेचन किया गया है गिरिराज गाँव के अभावों का मारा ऐसा युवक है, जो घर की परिस्थितियों में घूट रहा है। फिर भी शहर में रहकर जी–तोड़ परिश्रम कर, ट्यूशन पढ़ा कर अपनी पढ़ाई करता है। इसी बीच माँ के गुजर जाने से पिता भी टूट जाते हैं और माँ के हाथों मिलने वाला आर्थिक संबल भी समाप्त हो जाता है। गाँव जाने पर भाई–भाभी की उपेक्षा और पिता की दयनीयता मन में टीस भर देती है। ऐसी परिस्थितियों में हेमन्ती ही उसका सम्बल बनती है। उसकी अनकही जबान को समझने वाली हेमन्ती। पर पिता के विरोध और तबादले के कारण उसके संबंध दूर हो जाते हैं।

भाई, फूफा तथा अन्य लोग अपने–अपने फायदे के लिये उनके नाम को भुनाते रहे। कभी उनसे, कभी उनका नाम ले दूसरों से–''चापलूसी और स्वार्थमय प्रवंचना के घने जंगल उग गये। उस बियाबान में गिरिराज अकेले थे। उनके नाम के झंडे के नीचे नाते–रिश्तेदारों तथा उनके सतोदरों ने ऐसा प्राचीर खड़ा कर

दिया, जिसमें गिरिराज की घुटी चीख गूँजती रही।''[289] उनके आदर्श वादिता के सारे सपने खंड–खंड हो गये। लोगों की काटती निगाहें उपेक्षित करती रहीं–''गिरिराज की मेहनत करके कुछ बन जाने की अदम्य कामना लुटी–पिटी–सी इतेषित होती रही। साफ–सुथरा नैतिक जीवन निन्दा और भ्रष्टाचार के सड़े नाले में जा गिरा।''[290] सदा के सहनशील गिरिराज की शक्ति भी चूक जाती है। अनवरत होती माँगों ने उन्हें अपने कहे जाने वालों को दूर रखने के लिये विवश कर दिया..... ''वे पूरा दम लगाकर चीखे, ''दरबान ! बाहर निकालों इन बेईमानों को निकालो अभी ऽऽ .....आइंदा कभी द्वार के भीतर नहीं...........।''[291] और इन्ही शब्दों के साथ अशांत मन को शांति मिलती है। अन्य पात्रों में गिरिराज के पिता हैं। जो पत्नी की मृत्यु के बाद बेसहारा और असहाय हो उठे हैं। बड़े बेटे–बहू से त्रस्त है, फिर भी मेहनत करने वाले पुत्र के लिए माँ जैसी ममता की तड़प है, जो उसके शहर जाते समय चना–गुड़ देने में मूर्तिमान हो उठती है। पिता बड़े जरूर है, पर बेटों के सामने नत हैं चाहे रघुराज की बदतमीजियाँ हो या गिरिराज का अफसरों रोब। बेटे के विवाह के लिए उसे आदेश नहीं प्रार्थना करते हैं–एक दिन दद्दा ने विवाह के लिए फिर घिघियाना शुरू किया–''मेरी माँ का वास्ता दिया, छोटे भाई–बहन का मुहँ दिखाया.......... झरझर रो उठे पिता अधीर, दुःखित।''[292] इसी प्रकार पात्रों के चरित्र कहानी के अनुरूप ढले हैं। कहानी के प्रारम्भ में, विकास के साथ–साथ पात्रों के व्यवहार, मानसिकताओं में कैसे–कैसे बदलाव आते है ? आज का समाज कितना स्वार्थी हो उठा है जहाँ स्वार्थ दिखा वह वहाँ नीचता ही हद पहुँच जाते है। इनका मूल मंत्र है बाप बड़ा ना भैया, सबसे बड़ा रूपैया। यह उक्ति इस कहानी का आधार है।

मैत्रेयी पुष्पा ऐसे ही कुछ आर्थिक सवालों से उलझती दिखाई देती हैं। पिता की संपत्ति में पुत्री की बराबर की भागीरादी को आवश्यक मानती हैं। जिसे उनका आर्थिक पक्ष मजबूत हो। स्त्री का अपने घर, अपनी जन्मभूति को छोड़कर दूसरे घर

---

289 मैत्रेयी पुष्पा–चिन्हार आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, 1991 –पृ0सं0 119

290 वहीं, –पृ0सं0 122

291 वहीं, –पृ0सं0 122

292 वहीं, –पृ0सं0 117

में जाना उसके जीवन की बड़ी त्रासदी है। वे सवाल करती है कि जिस घर में उसने जन्म लिया, जिन माता–पिता ने उसका पालन–पोषण किया उनकी सम्पत्ति पर व्यावहारिक रूप से उसका कोई हक क्यों नहीं है।

4.3 शोषक वर्ग का क्रूर अत्याचार

मैत्रेयी पुष्पा ने शिक्षा की समस्या को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इस समस्या को मैत्रेयी पुष्पा की 'बेटी' कहानी में देखा जा सकता है। लेखिका ने बड़े ही मार्मिक ढंग से बेटा–बेटी को लेकर किए जाने वाले अन्याय का चित्रण किया है। 'मुन्नी' के माता–पिता पांच बेटों की पढ़ाई का खर्चा तो आराम से उठा सकते हैं लेकिन मुन्नी को पढ़ाने के लिए उनके घर में अकाल पड़ा है। मुन्नी इस बात से अनभिज्ञ नहीं है इसलिए विरोध करती है, लेकिन मां उसे दो वाक्यों में ही चुप करा देती है। यथा ''चुप होती है कि नहीं ? बहुत जबान चल गई है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराए घर का दलिदर तेरी कमाई नहीं खानी हमें ..... कह दिया कान खोलकर सुन ले।''[293] बेटी को शिक्षा से वंचित रखकर उसके बौद्धिक विकास का भी हनन कर देते हैं।

'अब फूल नहीं खिलते' इस कहानी में भी महाविद्यालयी नारी की शिक्षा संबंधी समस्या को वर्णित किया गया है। अपराध यदि कोई करता है तो उसकी सजा मिल ही जाती है। बाहर का व्यक्ति गुनाह करता है तो ठीक पर जब खेत ही फसल खा रहा है तो मुश्किल कार्य हो जाता है।

गली में तमाशबीनों की संख्या अधिक थी, ग्राहक की कम आए। ज्यादातर लोग मन बहलाव करने, आवाजें कसने के लिए थे। रंडियाँ एक–एक ग्राहक से जैसे जूझ रही थी, इस सारी बेपर्दगी और झुंझलाहट के बावजूद उनकी आँखे संभावित आँखों को खोजती रही, कोई नजर आता तो झट से लगता जैसे ग्राहकों से भी अधिक ये वासना में अधीर हुई जा रही है। ग्राहक उपेक्षा से आगे बढ़ जाता तो उनके चेहरे पर से मुखौटा उतर जाता, चेहरे पर तृष्णा, थकान उभर आती, आँखों की चमक बुझ जाती, होंठ सिकुड़ जाते और रंडी मुँह से पान की पीक थूक

---

293 मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 1991, पृ0सं0 21

देती।'

मेरे विचार से तो जो अपनी भावनाओं को जबरदस्ती कुचल डालता है, वह इंसान कहलाने योग्य नहीं है। जीवन के आनंद का गला घोंटना, इंसानियत का गला घोंटने के समान है।'

यह कथा झरना की है जो विश्वास के साथ महाविद्यालय में जाती है। उसके कापी पर गुप्ता सर अश्लील चित्र बनाते हैं तो उसे बहुत गुस्सा आता है। प्रिसिंपल के यहाँ जाती है तो वह भी गुप्ता को इस लहजे से समझता है कि जैसे वह भी उस प्रक्रिया में शामिल हो। प्रधानाचार्य ने कहा—''रूक जाओं, आज क्या हो जायेगा ?' 'सर, माँ चिंता करेगी, रात में नही रूक सकूँगी।''[294]

श्री को वह प्रिसिंपल द्वारा हुए अत्याचार के बारे में बता देती है। ''अकेली ही विष पीने का संकल्प ले बैठी हूँ। इतना बड़ा हादसा कभी—कभी नन्हा मन असहय बोझ तले दबकर चीखने लगता है, पर प्रौढ़ परिपक्व स्त्री की तरह दब जाती हूँ, छोटी नहीं रही अब। उस दिन, उस पल ही बड़ी हो गयी बहुत बड़ी। अपनी उम्र से दूनी—तिगुनी। संसार के सत्—असत् का भेद खुल गया मेरे समक्ष।''[295]

इस कहानी में पुरूष की स्त्री की ओर देखने की जो दृष्टि है वह चाहे कितना भी शिक्षित हो नहीं बदलती। असहाय विधवा नारी के बेटी का यौन शोषण है। इन सब के अलावा भी शिक्षा के प्रति जागरूकता का भी प्रयास देखने को मिलता है। 'बहेलिये' कहानी की नायिका 'गिरिजा' भी शिक्षा के महत्व से परिचित है। पिता की मृत्यु के बाद चाचा उन्हें शिक्षा से वंचित रखता है। बचपन में ही उसे शिक्षा के प्रति लगाव था। पति की मृत्यु के बाद सारी स्थिति बदल गई। वह सचेत होती है और पढ़ने की ओर रूख कर लेती है। लेखिका ने उसका चित्रण इस प्रकार किया है ''गिरिजा अचानक बड़ी हो गई। सारा भार जहाँ कँधे पर बैल के जुए सा आ टिका तो परिपक्वता बुद्धि में स्वयं ही समाती चली गई। उस दिन गिरिजा ने फिर पीछे छूटी पुस्तक हाथ में पकड़ ली। वे पढ़ने लगी शिक्षा और जागरूकता की बातें करने लगी, स्त्री शोषण के विरूद्ध आवाज दे उठी। रात भर सभाएँ करती रात्रि पाठशाला में ग्रामीण बहनों, को जोड़ लेती उनकी पुकार सुनकर

294 मैत्रेयी पुष्पा—ललमनियाँ—अब फूल नहीं खिलते, पृ0सं0 59

295 मैत्रेयी पुष्पा—ललमनियाँ—अब फूल नहीं खिलते, पृ0सं0 63

कुछ बड़े लोग बड़े प्रभावित हुए पर चिरस्थायी मुखिया गाँव के जाने–माने नामधारी नेता मन–ही–मन दहलने लगे अपनी हस्ती के प्रति अनजाने ही सशंकित।''[296] गिरिजा शिक्षा का दामन पकड़े स्वयं तो जागरूक होती ही है। अपनी शिक्षा का प्रयोग जनकल्याण के लिए भी करती है। वह उन स्त्रियों को भी जागरूक करती है जो स्वयं उनकी तरह ही शोषण की शिकार हैं। मुन्नी और गिरिजा शिक्षा के महत्व को समझती है। ये दोनों पात्र स्त्री पात्र आधुनिक स्त्री की छवि हैं।

4.4 ऋण समस्या और ग्रामीण जीवन

अपनी कहानी जनसाधारण तक पहुँचाने के लक्ष्य में मैत्रेयीजी ने सरल, स्वाभाविक, व्यवहारिक भाषा का प्रयोग किया है। इसमें दुरूहता और क्लिष्टता नहीं दिखाई पड़ती। सांकेतिक, प्रतीकात्मक, बिंबात्मक और चित्रात्मक भाषा के प्रयोग में वे सिद्धहस्त है। भाषा की सुगमता और सुबोधता के लिए लेखिका ने थल–काल के अनुसार संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल किया है।

कथ्य रोचक और संप्रेषणीय बनाने के लिए लेखिका ने अपनी कहानियों में विभिन्न शैली का प्रयोग किया है। आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, डायरी, पत्र, नाटकीय आादि तमाम शैलियों का प्रयोग करके लेखिका ने सफल कहानियों की रचना की। अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि गांव हाने के कारण स्थानीय भाषा का इस्तेमाल लेखिका ने किया है।

संदभाग्नुसार संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दु शब्दों के साथ पात्रानुकूल लेखिका ने कई देहाती शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने भाषा का प्रभाव बढ़ाने के लिए मुहावरे और कहावतों का प्रयोग भी किया है जिनसे भाषा के सौंदर्य एवं संदर्भ की गहनता पुष्ट होती है।

'बुढ़ापे की लाठी' पराए घर का दलिद्दर, अपार अरमानों का सागर', 'मर्मभेदी शर–संधान' जैसे संदर्भोचित प्रयोग प्राप्त है।

ग्रामीण पात्रों के लिए स्थानीय बोली और पढे–लिखे पात्रों के लिए अंग्रेजी और संस्कृत मिश्रित परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया गया है। ग्रामीणों की

296 मैत्रेयी पुष्पा–ललमनियाँ–अब फूल नहीं खिलते, पृ0सं0 63

बोलचाल की भाषा का यथातथ्य प्रयोग से मैत्रेयीजी का लक्ष्य तो उनकी संस्कृति और सभ्यता का यथार्थ चित्रण है।

'अपना अपना आकाश' 'बोझ' 'रायप्रवीण' 'अबूल नहीं खिलते' 'कृतज्ञ' 'सफर कि बीच'' आदि कहानियाँ गाँव के साथ शहरीय वातावरण का सामंजस्य भी है। इसलिए प्रस्तुत कहानियों में प्रयुक्त भाषा में अंग्रेजी और आधुनिक भाषा का प्रयोग किया गया है। 'बहेलिए', 'मत नाँहि दस बीस' 'आक्षेप' 'फैसला' 'सिस्टर' 'तुम किसकी हो बिन्नी' 'ताला खुला है पापा' 'साँप सीढ़ी' आदि कहानियों में पढ़े–लिखे पात्र हो तो भाषा में भी पात्रानुकूल परिवर्तन लेखिका लायी है। समय के साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ बदलती हैं। लेखिका इन बदलती परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों के चित्रण के लिए नवीन भाषा और शैली का प्रयोग करती है। अपनी कहानियों में लेखिका ने ग्रामीण जीवन के संघर्ष के साथ आधुनिक शहरी जीवन की यांत्रिकता खोखलापन आदि के चित्रण के लिए स्थानीय या बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है तो दूसरी तरफ विश्लेषणात्मक, आत्मनेपदीय, चेतना–प्रवाह, पूर्वदीप्ति, व्यंग्यात्मक, वर्णनात्मक, संस्मरणीय, पात्रात्मक, डायरी आदि शैलियों को ज्यादा महत्व दिया है। इन शैलियों को ग्रामीण जीवन की यथार्थता, समकालीन समस्याएं, आधुनिक युग की यांत्रिकता, जड़ता एवं नये जीवन शैली को अभिव्यक्त करने के लिए अपनाया गया है। मैत्रेयीजी ने मन के आंतरिक भावों एवं बदलते जीवन परिवेश की अभिव्यक्ति के लिए रचना–विधान और भाषा–शैली को उनके अनुरूप ढ़ाला है।

वर्णनात्मक शैली तो पहले से ही प्रयोग करते आ रही है। पात्रों के बाह्य रूप मनो विकार और घटनाओं का सटीक चित्रण इसके द्वारा हुआ है। इससे पात्रों का चरित्र और दृष्टिकोण स्पष्ट होते है। रचना का मूल तत्व एवं घटनाओं की अभिव्यक्ति इस शैली के प्रयोग से आकर्षक ढंग से होती है।

''लखिया कैसी अलहड़ बछेडा–सा मिल था उन्हें, इधर–उधर उजबक–सा फिरता, पाँवों पर ओक बहाए। आँखों में कीचड़ और दाँतों पर पीलेपन की परत......।

कुछ दिन तो लिहाज में चुप ही रही थीं उम्र में छोटा है तो क्या, है तो देवर ही। पर उसकी बावरी वेश–भूषा और गंदेलापन वे ज्यादा दिन बर्दाश्त नहीं कर पाई थी।''

'अपना अपना आकाश' 'पागल गयी है भगवती' 'ललमनियाँ' 'बिछुड़े हुए', 'रास' आदि कहानियों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

'कृतज्ञ' 'भँवर', 'सिस्टर, 'रिजक', बोझ', शतरंज के खिलाड़ी', 'राय प्रवीण', आदि कहानियों का प्रस्तुतीकरण लेखिका ने विश्लेषणात्मक शैली में किया है। 'राहत कैंप है, हर किसी को राहत चाहिए। अन्न वालों को अन्न, गोश्त वालों को गोश्त। गाँव में तो वैसे ही अदला–बदली की रिवाज होती है चावल–चीनी, गुड़–तेल सब अनाज के बदले सावित्री आगे बढ़ती चली गई।

राय प्रवीण सोचती है, इस दरबार में कवित्त, दोहे और छन्द काम आनेवाले नही, क्योंकि यहाँ यवन बादशाह अकबर नही। ये जूठन खानेवाले पंडित जूठन पचा जाएँ।''

विश्लेषणात्मक शैली में लिखित उपर्युक्त कहानियों में विचारों के विवेचन और विश्लेषण को महला दी जाती है। इसमें चरित्र–चित्रण और वातावरण के जगह विचारों और सिद्धान्तों की व्याख्या की प्रमुखता है।

पात्रात्मक शैली में लिखित उनकी कहानी 'फैसला' 'डायरी' शैली में लिखित 'ताला खुला है पापा' और संवाद शैली में लिखित 'बारहवीं रात' में लेखिका ने शिल्प पक्ष का नयापन लाने का प्रयत्न किया है। शिल्प पक्ष की दृष्टि से मैत्रेयीजी के तीनों कहानी संग्रह की कहानियाँ सफलता की उच्च कोटि पर है। साधारण लोगों की भाषा में लिखित उनकी कहानियाँ में भारत के साधारण लोगों की कहानी है।

4.5 मैत्रेयीपुष्पा के समकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

मैत्रेयी पुष्पा वैसे जानबूझकर नहीं स्वतःस्फूर्त ही सही मैंने जो लिखा है उसमें राजनीति ही आयी है। आज आदिवासी का जीवन कैसा हो, किसान का जीवन कैसा हो, पूंजीपति का जीवन कैसा हो यह सबकुछ राजनीति ही तय कर रही है। हमारा सारा समय राजनीति की धुरी पर घूम रहा है। साहित्य भी तो इन्हीं मजदूरों, किसानों, आदिवासियों, स्त्रियां, दलितों आदि से ही संबंधित होता है। इनसे अलग कहां होता है। इस तरह साहित्य राजनीति से अपने आप जुड़ जाता है। रही बात साहित्यकार की तो वह देखता है कि इन वंचित तबकों की लड़ाई कौन पार्टी लड़ रही है और वह उसका साथ देता है। जब मैं छोटी थी तो यह नारा खूब

चलता था–मांग रहा है हिन्दुस्तान रोटी कपड़ा और मकान। आजादी के सड़सठ साल बाद क्या आज भी यही स्थिति नहीं है? नारे तो सब लगाते हैं लेकिन स्थितियां नहीं बदलती हैं। जो भी ईमानदारी से काम करे मैं उसके पक्ष में खड़ी हूं। यह तो सबको दिखता ही है कि कौन वंचितों का साथ दे रहा है और कौन उद्योगपतियों के पक्ष में है?[297]

हाल ही में कुमार विश्वास से संबंधित एक महिला का जो विवाद सामने आया उसमें आपने उस महिला का पक्ष न लेकर कुमार विश्वास का पक्ष लिया। इसे लेकर कई लोगों ने आप पर स्त्री विरोधी होने का आरोप तक लगा दिया। इस पर आपका क्या कहना है?

मैत्रेयी पुष्पा कुमार विश्वास ने सार्वजनिक रूप से उस महिला के साथ किसी तरह के संबंध का खंडन किया है। कितनी विचित्र बात है कि वह महिला चाहती है कि कुमार उसके पति के पास आकर सफाई दें। प्रश्न यह है कि जो पति अपनी पत्नी की बात नहीं मान रहा है वह कुमार विश्वास की बात कैसे मान लेगा? मैं उस महिला के पक्ष में नहीं हो सकती जो अनाप–शनाप बातें करे और जिसे एक पुरुष के लिए दूसरे पुरुष का प्रमाणपत्र चाहिए। उसे तो अपने पति पर घरेलू हिंसा का केस दर्ज करना चाहिए। मेरा स्त्री–विमर्श इसकी इजाजत नहीं देता।

क्या स्त्री का एजेंडा यही है कि जिसके खिलाफ वह लड़ रही है उसी (पुरुष) जैसी बन जाए

आप जनवादी लेखक संघ से जुड़ी हैं। क्या आपको लगता है कि लेखक संगठन साहित्य में कोई सार्थक या हस्तक्षेपकारी भूमिका निभा पा रहे हैं?

मैत्रेयी पुष्पा ये लोग सोचते और बोलते तो बहुत हैं पर काम नाम का ही दिखाई देता है। दरअसल समस्या यह है कि इनका खजाने पर वर्चस्व नहीं है। ये किसी को कुछ दे नहीं सकते हैं इसलिए लोग इनसे जुड़ते नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि इनके पास अपने देश के आम आदमी किसानों मजदूरों से जुड़ने की भाषा नहीं है। भारतीय स्तर पर देशी सिद्धान्त नहीं है। स्त्री–पुरुष को आर्थिक ढांचे

---

297 विश्वनाथ त्रिपाठी– हिन्दी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0 6

में नहीं समझा जा सकता है। स्त्री मुक्ति का प्रश्न सिर्फ आर्थिक आत्म निर्भरता से जुड़ा हुआ नहीं है। वर्गीय सोच से भारतीय समाज का विश्लेषण संभव नहीं है। इन्हें भी इस बात को समझना चाहिए। तभी वे समाज की नई शक्तियों–महिलाओं दलितों को अपने आप से जोड़ सकते हैं और एक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं।

हिन्दी की कुछ लेखिकाओं के लिए स्त्री मुक्ति का सवाल यौन स्वतंत्रता का सवाल बनकर रह गया है। उनका मूल तर्क होता है कि पुरुष ऐसा करता है तो हम क्यों नहीं? इस संबंध में आपका क्या मानना है?

4.6 मैत्रेयीपुष्पा और गाँधीवाद

हमारे जटिल समाज में हर चीज़ की तरह स्त्रियों की हैसियत भी कहीं न कहीं आर्थिक बुनियाद पर टिकी है। औरत की दोयम दरजे की हैसियत का मूल आधार है– उनकी आर्थिक पराधीनता जिसका मूल कारण है पुरूषात्मक सत्ता। जगदीश्वर चतुर्वेदी इस संदर्भ में कहते हैं:

''स्त्री की स्वाधीता, समानता, सम्मान, सत्ता में शिरकता का संघर्ष और शिक्षा एवं रोजगार के संघर्ष को पितृसत्ता विरोधी साहित्य की कोटि में रखा जाना चाहिए। स्त्री की पराधीनता को आर्थिक पराधीनता से जोड़कर देखने वाली रचनाएँ भी इसी कोटि में आयेंगी। घरेलू काम–काज एवं घरेजू दासता के छोटे–छोटे रूपों का रूपायन, स्त्री को पुण्य या वस्तु में बदलने एवं स्त्री को माल बना देने वाली मनसिकता के खिलाफ संघर्ष को व्यक्त करने वाली रचनाएँ इसी कोटि में आयेंगी।''

जगदीश्वर चतुर्वेदी ने स्त्री लेखन की जो विशेषताएँ गिनायी हैं, मैत्रेयी पुष्पा की औपन्यासिक कृतियाँ उन पर पूर्णतः खरी उतरती हैं। उन्होंने स्त्री–विमर्श के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के साथ ही साथ अनेक आर्थिक सवाल भी उठाये हैं। जोकि नारी को आजीवन पराधीन रखते हैं। आर्थिक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी स्त्रियों के हाथ में न अपनी हेह है, न अपना पैसा और न ही अपने रिश्ते। पुरूष जब चाहता उसे अपनी संपत्ति एवं रिश्तों से अलग कर देता है।''[298]

सामाजिक–अर्थव्यवस्था में स्त्री का क्या मूल्य है, यह प्रश्न शाश्वत है। लेखिका ने अविवाहिता, विवाहिता, तलाकशुदा एवं विधवा स्त्रियों के जीवन पर गौर

---

298 डॉ0 रामदरथ मिश्र– हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0 36

करने के पश्चात अनेक आर्थिक सवाल उठाये हैं। मैत्रेयी पुष्पा मानती हैं कि आर्थिक स्वतंत्रता मिलने भर से स्त्रियों की सारी समस्याओं का हल नहीं हो जाता। लेकिन यह ऐसी आधार भूमि है जिसे प्राप्त किए बिना आगे का रास्ता तय नहीं किया जा सकता। आर्थिक स्वतंत्रता के अंतर्गत आने वाले विभिन्न पहलुओं की चर्चा अपेक्षित है।

डॉ0 निर्मला जैन ने विभिन्न महिला लेखिकाओं के स्त्री संबन्धित कथा–साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है,

''इतिहास साक्षी है कि पुरूष ने स्त्री को जिन दो मोर्चो पर लगातार कुचला है उनमें से एक अर्थ और दूसरा सेक्स। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के लिए संघर्ष करती हुई स्त्री, महिला लेखिकाओं की प्रिय थीम है।''[299]

4.7 गाँव में सवर्णो की राजनीति

मैत्रेयी पुष्पा वैसे जानबूझकर नहीं स्वतः स्फूर्त ही सही मैंने जो लिखा है उसमें राजनीति ही आयी है। आज आदिवासी का जीवन कैसा हो, किसान का जीवन कैसा हो, पूंजीपति का जीवन कैसा हो यह सबकुछ राजनीति ही तय कर रही है। हमारा सारा समय राजनीति की धुरी पर घूम रहा है। साहित्य भी तो इन्हीं मजदूरों, किसानों, आदिवासियों, स्त्रियां, दलितों आदि से ही संबंधित होता है। इनसे अलग कहां होता है। इस तरह साहित्य राजनीति से अपने आप जुड़ जाता है। रही बात साहित्यकार की तो वह देखता है कि इन वंचित तबकों की लड़ाई कौन पार्टी लड़ रही है और वह उसका साथ देता है। जब मैं छोटी थी तो यह नारा खूब चलता था–मांग रहा है हिन्दुस्तान रोटी कपड़ा और मकान। आजादी के सड़सठ साल बाद क्या आज भी यही स्थिति नहीं है? नारे तो सब लगाते हैं लेकिन स्थितियां नहीं बदलती हैं। जो भी ईमानदारी से काम करे मैं उसके पक्ष में खड़ी हूं। यह तो सबको दिखता ही है कि कौन वंचितों का साथ दे रहा है और कौन उद्योगपतियों के पक्ष में है?[300]

---

299 डॉ0 निर्मला जैन – समकालीन हिन्दी उपन्यास – हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला – संस्करण : 2004

300 डॉ0 रामदरश मिश्र– हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान, पृ0सं0 37

मैत्रेयी पुष्पा कुमार विश्वास ने सार्वजनिक रूप से उस महिला के साथ किसी तरह के संबंध का खंडन किया है। कितनी विचित्र बात है कि वह महिला चाहती है कि कुमार उसके पति के पास आकर सफाई दें। प्रश्न यह है कि जो पति अपनी पत्नी की बात नहीं मान रहा है वह कुमार विश्वास की बात कैसे मान लेगा? मैं उस महिला के पक्ष में नहीं हो सकती जो अनाप–शनाप बातें करे और जिसे एक पुरुष के लिए दूसरे पुरुष का प्रमाणपत्र चाहिए। उसे तो अपने पति पर घरेलू हिंसा का केस दर्ज करना चाहिए। मेरा स्त्री–विमर्श इसकी इजाजत नहीं देता।

मैत्रेयी पुष्पा ये लोग सोचते और बोलते तो बहुत हैं पर काम नाम का ही दिखाई देता है। दरअसल समस्या यह है कि इनका खजाने पर वर्चस्व नहीं है। ये किसी को कुछ दे नहीं सकते हैं इसलिए लोग इनसे जुड़ते नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि इनके पास अपने देश के आम आदमी किसानों मजदूरों से जुड़ने की भाषा नहीं है। भारतीय स्तर पर देशी सिद्धान्त नहीं है। स्त्री–पुरुष को आर्थिक ढांचे में नहीं समझा जा सकता है। स्त्री मुक्ति का प्रश्न सिर्फ आर्थिक आत्म निर्भरता से जुड़ा हुआ नहीं है। वर्गीय सोच से भारतीय समाज का विश्लेषण संभव नहीं है। इन्हें भी इस बात को समझना चाहिए। तभी वे समाज की नई शक्तियों–महिलाओं दलितों को अपने आप से जोड़ सकते हैं और एक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं।

4.8 पंचायत व्यवस्था

मैत्रेयी पुष्पा यौन संबंधों में पुरुष ऐसा करता है तो हम क्यों नहीं– इस पर मेरा कहना है कि हम मनुष्यगत अधिकार या नागरिकता का अधिकार तो वैसा ही चाहते हैं जैसे पुरुष को मिला हुआ है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि हम पुरुषों की नकल या अनुकरण करना शुरू कर दें। अगर हम नकल ही कर रहे हैं तो फिर नया क्या करेंगे। क्या स्त्री का एजेंडा यही है कि जिसके खिलाफ वह लड़ रही है उसी जैसी बन जाए। यौन संबंध तो परिस्थिति विशेष की बात है। जब ये बन जाते हैं इससे मैं इनकार नहीं करती। किंतु एक बड़ा प्रश्न यह है कि केवल हम इसी की आजादी लेने आए हैं क्या? राजेन्द्र यादव कहते कि देह मुक्ति स्त्री की सबसे बड़ी मुक्ति है। मैं उनकी बात को पूरी तरह नहीं मानती थी। शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं। हम तो अंधे बहरे और लंगड़े थे। हमारे ये अंग

मालिकों के हुक्म पर काम करने को विवश थे। स्त्री के लिए तो इन सभी की मुक्ति आवश्यक है। स्त्री की गुलामी व्यापक है इसलिए उसकी आजादी का संघर्ष भी व्यापक होना चाहिए।

आपकी रचनाओं में भी यौन प्रसंगों का चित्रण हुआ है। आप पर यह आरोप लग रहा है कि स्वयं तो आपने यौन प्रसंगों का चित्रण किया किंतु जब नई लेखिकाएं वैसा कर रही हैं तो आप उनका विरोध कर रही हैं?

मैत्रेयी पुष्पा जो ऐसा सोचते हैं उन्होंने मेरी रचनाओं को ध्यान से नहीं पढ़ा है। उन्होंने उन प्रसंगों को भी मौज–मस्ती का प्रसंग मानकर पढ़ा है जैसा कि आजकल की रचनाओं में होता है जबकि वे घटनाएं जानलेवा स्थितियों में घटित हुई हैं और उन्हें जिंदगी के किसी भी तरह बचा लेने की कोशिश के रूप में देखना चाहिए। महादेवी जी ने कहीं लिखा है कि ''युद्ध में जब सिपाही मर रहा है तो उसे नर्स की योग्यता से क्या मतलब होगा? उसे तो नर्स का स्पर्श और संवेदना चाहिए। मैंने न तब यौन सुख के लिए लिखा था न अब मानती हूं। मेरे प्रसंग और चित्रण पुरुषों की होड़ में नहीं है। समस्या यौन प्रसंगों के चित्रण से नहीं बल्कि चित्रण की दृष्टि से है।''[301]

जिसे योनि–प्रसंग कहा गया है वह जीवन से जुड़ा हुआ तो है लेकिन लिखते समय बगैर मकसद इन प्रसंगों का आना उचित नहीं है मेरी नायिकाओं के मकसद अश्लील हरगिज नहीं थे। हमें ही सावधान रहना होगा कि साहित्य, साहित्य ही रहे पॉर्न न हो जाए।

कुछ समय पहले 'जनसत्ता' में आपने एक लेख लिखा था। उस लेख में आपने नई पीढ़ी की लेखिकाओं की साहित्येत्तर गतिविधियों की चर्चा करते हुए उनकी रचनात्मक उत्कृष्टता पर सवाल उठाया था। उस लेख को पढ़कर लगा कि आप यह मानने को तैयार नहीं है कि स्त्री रचनाकारों की यह नई पीढ़ी कुछ बेहतर रच रही है। आप ऐसा कैसे कह सकती हैं?

''मैत्रेयी पुष्पा अब मैं इस प्रश्न के जवाब में तुमसे प्रश्न करती हूं। क्या तुम इनकी कोई ऐसी रचना बता सकते हो जिसने 'कलिकथा वाया बाइपास' की तरह

301 वर्मा महादेवी – शृंखला की कड़ियाँ – लोकभाती पेपर बैक्स, इलाहाबाद – तीसरा संस्करण : 2015

अपनी कोई छाप छोड़ी? 'कठगुलाब' जैसा कोई उपन्यास आया है क्या? क्या बड़े कैनवास की रचना का अभाव तुम्हें नहीं दिखता? अगर तुम सहमत नहीं हो तो किसी रचना का नाम बताओ। मैं यह नहीं कह रही हूं कि पूरा रचनात्मक परिदृश्य सूखा पड़ा है। रचनाएं लिखी जा रही हैं। पर मेरा सवाल यह है कि ऐसी कोई रचना क्यों नहीं आ रही है जो अपने समय की घटना बन जाए? अगर हमारे समय से आगे की स्त्रियां ऐसा कुछ नहीं रच पा रही है तो मैं कैसे कहूं कि यह समय रचनात्मक उत्कृष्टता का है। अभी तो वही दोहराया जा रहा है। जो कृष्णा सोबती मित्रों मरजानी में कर आयी हैं। साहित्य में दोहराव रचनाकार का सबसे बड़ा अवगुण है। भले ही हम उसे नए फार्म में कहें पर बात तो वहीं कह रहे हैं।[302]

4.9 भारतीय संस्कृति एवं ग्रामीण जीवन

अतरपुर जाट किसानों का गाँव है और जैसा है वैसा ही बने रहना चाहता है। वह हर बदलाव का विरोधी है। यथास्थिति में जब जब परिवर्तन होता है तब कुछ मूल्य और विश्वास टूटते है। हर विकास परम्परागत मान्यता को बदलता और तोड़ता है। ''इतिहास कागज के पन्नों पर उतरने से पहले मानव शरीरों पर लिखा जाता है।"[303]

रेशम की हत्या से आहत सारंग आवाज उठाती है तो परत दर परत ऐसे खौफनाक चेहरे और कारनामे सामने आते हैं जो गाँव के लोगों की सीधी सादी छवि से मुखौटा उतार फेंकते हैं। सारंग का उच्च शिक्षित पति रंजीत, जो गाँव की भलाई के बारे में सोचता है और शहर में नौकरी न करके गाँव की उन्नति के लिए काम करना चाहता है, सारंग का साथ तो देता है लेकिन धीरे धीरे गाँव की राजनीति के दलदल में उसके गाँव की भलाई करने के सपने टूटने लगते हैं और वह भी उसी रंग में रंग जाता है।

''विधवा रेशम को मारने वाला डोरिया सारंग का दुश्मन बन जाता है। वह उसके बेटे चन्दन को भी जान से मारने की धमकी देता है जिससे आतंकित रंजीत कहता है कि "सारंग, मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ, अब तो हमें माफ कर दो। मैं

---

302 हंस (मासिक पत्रिका) : सम्पादक – राजेन्द्र यादव, अगस्त 1993, पृ0सं0 – 381
303 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ0 सं0 145

कायर हूँ, डरपोक हूँ, हिम्मत वाला हूँ, या लड़ाकू हूँ ? मुझे कुछ याद नहीं। मेरे बच्चे पर रहम खाओ सारंग अपनी बहन पर चन्दन को न्योछावर मत करो।"[304]

चन्दन को उसके चाचा के पास शहर भेज दिया जाता है। ममतामयी, भावुक सारंग पुत्र वियोग में घुलने लगती है। वह रात दिन डोरिया से बदला लेने के बारे में सोचती रहती है जिसने उसे उसके पुत्र से अलग कर दिया। रंजीत भी कुछ न कर पाने की वजह से चिड़चिड़ा हो जाता है। बेटे की दूरी से दुखी सारंग स्कूल में आये नए मास्टर के विचारों से प्रभावित हो उसके करीब जाने लगती है तो गाँव के लोग तरह–तरह की बातुँलाना शुरू कर देते है। बिना सारंग का पक्ष जाने और उसके शोक संतप्त ह्रदय को शांति देने की जगह रंजीत भी उसे ही दोषी मान लेता है। दोनों के बीच की ये मानसिक दूरी सारंग को श्रीधर के और करीब ले जाती है। गाँव के प्रधान के बहकावे में आकर रंजीत श्रीधर पर हाथ उठा देता है।

लेखिका का एक इंटरव्यू सुना था मैंने जिसमें इसी संवाद का जिक्र करते हुए उनका कहना था कि सारंग का भाव श्रीधर को देह सुख देना या पाना नहीं बल्कि उसे मृत्यु समान पीड़ा के दुःख से निकालना है। श्रीधर एक ईमानदार मास्टर है जो स्कूल में भ्रष्टाचार होने नहीं देता। सारंग के लिए वो एक मास्टर नहीं गाँव का स्कूल है जिसे ठीक से चलाने के प्रयास में उसकी ये हालत हुई और उसके पास फिलहाल उसकी देह के अलावा अपना कुछ नहीं जो उसे दे सके। वो उसे स्वस्थ देखने के लिए कुछ भी करने को तैयार है, ठीक वैसे ही जैसे युद्ध क्षेत्र में नर्स सैनिकों को बचाने के लिए उन्हें हर तरह से सांत्वना देती है। यानि स्त्री के देह समर्पण का कोई ठोस आधार होना चाहिए हालांकि ये प्रसंग यौन सुचिता की बनी–बनायी धारणा को तोड़ते है।''[305]

रंजीत और श्रीधर के बीच भटक रहे उसके मन की स्थिति को जानते हुए उसके ससुर कहते है कि "मास्टर से तू प्रेम के कारण बंधी है तो रंजीत से मोह के जरिये। मोह को काटने के लाख जतन करते हैं हम, कटता है क्या ?"'[306]

---

304 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ0सं0 35

305 वही, पृ0 सं0 35

306 वही, पृ0सं0 37

गाँव में चुनाव के दिन आते हैं और प्रधान इस बार रंजीत को उम्मीदवार बनाना चाहते हैं जबकि श्रीधर और भंवर आदि सारंग को चुनाव लड़ने को प्रेरित करते हैं। सारंग मना करते हुए कहती है कि–"तुम्हारे विचार से बेड़ियाँ, हमारे चलते सुख शांति। इतना समझ लो कि ढीली बेड़ी ही पाँव ज्यादा काटती है। मैं अपने घर इसी हैसियत से रह सकती हूँ, बस। ज्यादा कुछ करुँगी तो घर की बहू होने का हक भी छीन लिया जाएगा।"[307]

लेकिन अंतत उसे पर्चा भरना ही पड़ता है। उधर रंजीत पर्चा नही भर पाता तो बौखलाया हुआ चन्दन को फिर अपने भाई के पास शहर भेजना चाहता है और विरोध करने पर सारंग से मार पीट पर उतारू हो जाता है। तब बेटे के लिए सारंग उग्र हो बन्दूक उठा लेती है और गोली चलाते हुए रंजीत को ललकारती है कि "असल मर्द है तो छू चन्दन को।"[308]

सारंग को नाम वापस लेने के लिए डराया धमकाया जाता है लेकिन वो हार नही मानती तब उसे हराने के लिए साम दाम दंड भेद सभी उपाय किये जाते हैं। सारंग का व्यक्तिगत संघर्ष धीरे–धीरे सामाजिक संघर्ष का रूप ले लेता है। पुरुष प्रधान सामंती समाज के विरुद्ध खड़े होकर वह साहस के साथ न सिर्फ उनका सामना करती है बल्कि स्त्रीमुक्ति का अनूठा आदर्श प्रस्तुत करती है। उपन्यास के अंत में रंजीत का भी मोह भंग होता है और वह वापस सारंग के पास लौट आता है।

मैत्रेयी जी के लेखन की यही विशेषता होती है कि कहानियां या उपन्यास कल्पना नही वरन यथार्थ प्रेरित होते हैं जो सहज ही पाठक को बाँध लेते है। बहुत सारे ऐसे संवाद और प्रसंग भी उपन्यास में हैं जिसमें स्त्री स्वतंत्रता और विमर्श के कई आयामों को अपनी जगह सही सिद्ध करने के तर्कों के चलते इस उपन्यास को लिखने पर लेखिका को तीखी आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा लेकिन सच के साहस ने उन्हें अपनी विचारधारा के प्रति अडिग रखा।

4.10 नारी जीवन का आदर्श और ग्रामीण जीवन

---

307 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ0सं0 67
308 वही, पृ0 सं0 78

नैतिकता के प्रसंग में हमेशा यह तथ्य ध्यान रहे कि अंतर्मन में बैठे नैतिक मूल्य कभी तटस्थ नहीं होते। न वे तटस्थ भाव से मन में प्रवेश करते हैं और न तटस्थ रहने देते हैं। नैतिकता के दायरे और सरोकारों को सिर्फ सवालों के दायरे तक सीमित करके नहीं देखना चाहिए बल्कि यह देखें कि नैतिकता के सामान्य लक्षण किस तरह व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इस प्रसंग में व्यक्ति को समग्रता में देखना चाहिए और उसके संदर्भ में ही उसके आत्म की परीक्षा की जानी चाहिए। यानी लेखिका को 'मैं' को समग्र के अंश के रूप में देखना चाहिए। समग्र से काटकर लेखिका के 'मैं' को देखने से चीजें साफ ढ़ंग से समझ में नहीं आतीं।यह समग्र जेण्डर और समुदाय दोनों से बना है। इसका अर्थ यह है कि साहित्य का इतिहास पढ़ाते समय जब दलित या स्त्री आत्मकथा पर बात की जाय तो समुदाय, लिंग और जाति के आधार पर बातें की जाएं। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो मौजूदा दौर समुदाय और साहित्य के अन्त संबंध के आधार पर पढ़ने या विश्लेषित करने की मांग करता है। हमारे आलोचकों ने अभी तक साहित्य और समुदाय के अंतस्संबंध पर सोचा ही नहीं है। वे तो साहित्य और वर्ग, साहित्य और समाज के आधार की ही चर्चा करते रहे हैं। यानी साहित्य और समुदाय का अन्तस्संबंध एक नए पैराडाइम को जन्म दे रहा है। इस पैराडाइम के लक्षणों की विस्तार में जाकर पड़ताल करने की जरूरत है।

स्त्री–आत्मकथाओं में नैतिकता के सवाल महत्वपूर्ण हैं। इनके बारे में हमें पद्धति और शास्त्र दोनों ही स्तरों पर स्पष्ट समझ से काम लेना होगा। नैतिकता के मानकों को दिखाकर आमतौर पर स्त्री को अधिकारहीन बनाने की कोशिश की जाती है और उसे सार्वजनिक जीवन में अपनी स्वायत्त जगह बनाने से रोका जाता है।

इस परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी पुष्पा की सामाजिक स्थितियों और उनके इर्दगिर्द बुने हुए नैतिक मानकों को देखा जाना चाहिए। नैतिकता के तानेबाने को समग्रता में देखते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने लिखा है, 'बन्धन मुझे रास नहीं आते।बन्धनों में मैं छटपटाने लगती हूँ। 'यह कमोवेश प्रत्येक भारतीय स्त्री की स्थिति है।''[309]

---

309 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004, पृ0 सं0 68

4.11 ग्रामीण जीवन और शिक्षा

'स्व" का बहुरूपी चरित्र स्त्री आत्मकथा विधा की विशेषता है। इसका प्रधान कारण है स्त्री का परंपरगत रूप और जीवन एक सामान्य आख्यान देता है जिसमें स्त्री दासता के अनेक रूप अभिव्यक्त होते हैं। यह रूप सम्प्रति, नैतिक तौर पर अप्रासंगिक है। इस परंपरागत रूप के आधार पर स्त्री की परिवर्तित स्थितियों का अंदाजा लगाना संभव नहीं है। इस रूप की जटिलताओं और असफलताओं या अप्रासंगिकता को परंपरागत सिद्धान्तों के जरिए नहीं समझा जा सकता। स्त्री के गुलाम रूप और स्वतंत्र, स्वायत्त आधुनिक रूपों को समझने के लिए स्त्रीवादी सैद्धान्तिकी के एकाधिक सिद्धान्तों की मदद लेने पर ही आत्मकथा खुलती है।

मैत्रेयी पुष्पा – सेक्स प्रेम की मृत्यु है

सुविधा और सम्पन्नता का साहित्य नहीं होता। वह दरबारी साहित्य होता है

– मैत्रेयी पुष्पा

जिन किताबों का बहुत ज्यादा विज्ञापन किया जाता है उन किताबों को मैं पढ़ती ही नहीं हूँ

आप हिन्दी अकादमी दिल्ली की पहली महिला उपाध्यक्ष बनी हैं। एक स्त्री का किसी साहित्यिक संस्था का प्रमुख बनना एक बड़ी परिघटना है। आप इसे कैसे देखती हैं?

मैत्रेयी पुष्पा उपाध्यक्ष के लिए मेरे नाम की सूचना जारी होते ही बधाइयों का तांता लग गया। इसी क्रम में एकुोन अमेरिका का आयाुोन करने वाले ने बताया कि वे एक डॉक्टर है और आम आदमी पार्टी से जुड़े हुए है। उन्होंने खुशी जाहिर करते हुए कहा कि आप बहुत बड़ी साहित्यकार हैं इसलिए आपको उपाध्यक्ष बनाया गया। मैंने उनसे कहा कि साहित्यकार तो मैं पहले से थी लेकिन 'आप' नहीं थे। यह मैं राजनीति की बात नहीं कर रही हूं। मैं भावना की बात कर रही हूं। दिल्ली सरकार ने मेरे साहित्यिक काम और साहस का सम्मान किया है। इस तरह की 'जेनुइनिटी' पहले से निभाई गई होती तो न जाने कितनी महिलाओं को साहित्यिक संस्थाओं में जगह मिल गई होती। कितनी विडम्बना है कि रचनात्मक उत्कृष्टता के बावजूद देश और राज्य दोनों स्तर की साहित्यिक संस्थाओं से महिलाएं बाहर हैं।

अच्छा होगा कि अगर दूसरी पार्टियां भी नारेबाजी से ऊपर उठकर महिलाओं के बारे में सोचें।[310]

पिछले कुछ सालों से हिन्दी अकादमी की गतिविधियां बहुत सीमित हो गई हैं। इसकी सक्रियता गोष्ठियों तक सिमट गई है। अकादमी के कायाकल्प को लेकर कोई योजना है?

मैत्रेयी पुष्पा गोष्ठियां कराना कोई बड़ी बात नहीं है। दिल्ली जैसे शहर में यह बहुत होती हैं। कई बार लेखक अपने से ही तो कई बार प्रकाशक भी गोष्ठियां कराते रहते हैं। ये अधिकांश गोष्ठियां सिर्फ निंदा या प्रशंसा के लिए होती हैं जिनका कोई महत्व नहीं होता। मैं तो चाहूंगी कि साहित्यिक गतिविधियों का ऐसा समायोजन हो, जहां कोई सार्थक लेखन करने वाला अपने आपको अपमानित उपेक्षित महसूस न करे। हताश होकर लौट न जाए। अकादमी ईमानदार लोगों के पक्ष में माहौल बनाने का काम करेगी। अकादमी की पत्रिका 'इन्द्रप्रस्थ भारती' में बहुत सुधार की गुंजाइश है। वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य में उसे एक हस्तक्षेपकारी पत्रिका बनाया जा सकता है। कुल मिलाकर मैं कहना यह चाहती हूं कि अकादमी के कामकाज में व्याप्त अनियमितता और भ्रष्टाचार पर रोक लगे। इससे बेहतर साहित्यिक माहौल बनेगा। 'जेनुइन' लोग सामने आएंगे और अकादमी का कायाकल्प अपने आप शुरू हो जाएगा।

4.12 ग्रामीण जीवन का रहन–सहन और स्वास्थ्य व्यवस्था

हिन्दीभाषी औरत कैसे जीती है और उसके चारों ओर किस तरह की घेराबंदी है, उसके अनेक चित्रों का विस्तृत विवरण मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा में दिया है। फलतः आत्मकथा में जेण्डर यानी लिंग और समुदाय की अवधारणा केन्द्र में चली आई है। अब आत्मकथा पढ़ते हुए आप एक लेखक की आत्मकथा नहीं पढ़ रहे बल्कि एक स्त्री और एक समुदाय का आख्यान पढ़ रहे हैं। आत्मकथा में एक स्त्री या एक दलित का प्रतिवाद या छटपटाहट या बेचौनी निजी होने के साथ साथ सामुदायिक भी है।

310 डॉ0 शोभा यशंवते (संपा0) मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य नारी जीवन, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–2009, पृ0सं0 66–67

यानी रचना में एकाधिक प्रतिवादी इमेजों को हम पढ़ते हैं। ये दोनों चरित्र (निजी चरित्र और सामुदायिक चरित्र) एक–दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते नजर आते हैं। इसके कारण आत्मकथा में एक साथ अनेक आख्यान चलते रहते हैं। अतः इस तरह के प्रतिवादी चरित्रों को एक महाख्यान में बांधना संभव नहीं है। कहने के लिए यह एक औरत की कहानी है लेकिन इसमें अनेक चरित्र हैं जो इस कहानी के साथ समानांतर कहानियों को जन्म दे रहे हैं। इसके अलावा संस्कृति के भी एकाधिक रूप सामने आते हैं। एक संस्कृति वह है जिसे लेखिका स्वयं जीना चाहती है और दूसरी संस्कृति वह है जिसे समाज जीना चाहता है या जी रहा है। समाज जिस संस्कृति को जी रहा है वह लेखिका के लिए समस्याएं खड़ी कर रही है। स्त्री के लिए मुश्किलें पैदा कर रही है। यही वजह है कि मैत्रेयी पुष्पा ने जगह–जगह बेहद चुटीली मुहावरेभरी भाषा का इस्तेमाल किया है। जैसे– 'स्त्रियों की छाती में थालियाँ छनछनाती हैं।', 'कहते हैं कि पत्नी से बड़ा ' शॉक एब्जॉर्बर ' कोई नहीं होता।', 'जो खुलकर हँसता है, उसे खुदा की जरूरत नहीं।', 'सूरत के साथ योग्यता न हो तो सुन्दरता अधूरी रहती है' आदि।[311]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में चुटीले वाक्य आमतौर पर वहां पर आए हैं जहां पर लेखिका पुनर्व्याख्या की मांग करती है। नए सिरे से कोई बात कहना चाहती है या नई बात की ओर ध्यान खींचना चाहती है, यह उसकी ध्यान खींचने की कला हैं। इस तरह वह यह भी बताने की कोशिश करती है कि हमारे पास एकाधिक 'स्व' या 'मैं' हैं। या यों भी कह सकते हैं कि एक से अधिक आत्माएं हैं। एकाधिक 'मैं' के अभाव में असल में आख्यान नहीं बनता। नाटकीय इमेजों की सृष्टि नहीं होती। या छद्‌म की सृष्टि नहीं होती। साहित्य की कलात्मक रणनीति का यह अन्तर्ग्रथित हिस्सा है।

सवाल यह है कि आत्मकथा के विश्लेषण की पद्धति क्या हो? क्या एक पद्धति से आत्मकथा समझ में आएगी? आत्मकथा को एक पद्धति या शास्त्र या सिद्धांत से समझना संभव नहीं है। इस प्रसंग में पहली बात यह कि स्त्री का लिंग तय है और हमारा समाज स्त्री को सामाजिक निर्मिति न मानकर ईश्वर प्रदत्त या

---

311 मैत्रेयी पुष्पा – ललमनियाँ (रिजक), किताबघर प्रकाशन, 1996 पृ0सं0 76

प्राकृतिक देन मानकर चलता है। पहली आवश्यकता है कि स्त्री को ईश्वरप्रदत्त न मानें। स्त्री के बारे में बनाए सभी कानूनों, मान्यताओं और संस्कारों को अपरिवर्तनीय, स्वाभाविक, अनिवार्य और अपरिहार्य न मानें। स्त्री की निर्मिति की सामाजिक प्रक्रियाओं पर नजर रखें, इन प्रक्रियाओं की जितनी गहरी समझ होगी। स्त्री के बारे में उतने ही बेहतर मूल्यांकन की संभावनाएं भी होगी। जिस तरह समाज बदलता रहता है उसी तरह स्त्री भी बदलती रहती है। स्त्री कैसे बदल रही है उस प्रक्रिया को सहृदयभाव से समझने और स्वीकार करने की जरूरत है। स्त्री को जड़ और अपरिवर्तनीय रूप में देखने के कारण ही हमारे आलोचक एक खास किस्म के स्टीरियो टाइप से आगे जाकर स्त्रियों की समस्याओं को समझने में असमर्थ रहे हैं।

''स्त्री सामाजिक निर्मिति है और परिवर्तनशील अवस्था में रहती है। उसके रूपान्तरित रूप का एक छोर पाठ में होता है और दूसरा छोर पाठक के मन में या सामयिक समाज में होता है जो पाठक पढ़ते समय बनाता है। इस नजरिए से यदि स्त्री को देखें तो स्त्री का पाठ भी गतिशील और परिवर्तनीय होता है।''[312]

मसलन् स्त्री की नैतिक मान्यताओं के सवाल को ही लें। स्त्री की नैतिकता को सामयिक सरोकारों की रोशनी में बार– बार परिभाषित करने की आवश्यकता है।हमें यह भी देखना चाहिए कि सामाजिक सरोकारों या स्त्री के सरोकारों का सामाजिक– सांस्कृतिक क्षेत्र कितना व्यापक है या कितने बड़े क्षितिज को स्त्री घेरती है। स्त्री के नैतिक मूल्यों और मान्यताओं को परिभाषित करने वाले संस्थानों का चरित्र किस तरह का है ? इन संस्थानों का चरित्र ही अंततःस्त्री के निजी और सामाजिक चरित्र का गठन करता है। यदि संस्थानों का चरित्र पुंसवादी है तो तय है स्त्री की मान्यताओं–संस्कारों और सामाजिक अवस्था की स्थितियों का पुंसवादी विचारधारा और संस्थानों के साथ टकराव होगा। यही वजह है ज्योंही कोई स्त्री तयशुदा फ्रेमवर्क के बाहर आकर सोचने–समझने या व्यक्त करने की कोशिश करती है उस पर लांछन लगने शुरू हो जाते हैं। स्त्री के प्रति लांछनों की अभिव्यक्ति इस बात का संकेत है सामाजिक संस्थानों का चरित्र पुंसवादी है और असहिष्णु है। इस नजरिए से देखें तो स्त्री के सामने दोहरी चुनौती है, उसे पुंसवादी संस्थानों के

---

312 मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1994 पृ० 56

दबाब से अपने लिंग की रक्षा करनी है वहीं दूसरी ओर अपने लिए छोटे छोटे कामों, इच्छाओं, धारणाओं और मान्यताओं की अभिव्यक्ति के लिए जगह भी निकालनी है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा पढ़ते समय हमें आत्मकथा मॉडल के प्रारूप पर भी विचार करना चाहिए। स्त्री आत्मकथा में लेखिका को एकल चरित्र को रूप में देखते समय स्त्री के निर्माण के ऐतिहासिक–सामाजिक कारणों पर नजर जाती है। वहां पर उसके आख्यान के ऐतिहासिक कारणों को देख सकते हैं। जबकि स्व या आत्म या मैं को देखते समय उसके परंपरागरूप के साथ स्व के अंतर्विरोधों का उदघाटन होता है। परंपरागत स्त्री में एक सुनिश्चित औरत नजर आती है जो परंपरागत कामों में पंक्चुअल है। लेकिन जहां यह स्त्री पंक्चुअल नहीं है वहां पर वह नई दिशाओं में अभिव्यक्त करती नजर आती है।

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य हमें युगीन बोध कराता है। एक ओर जहाँ सहित्यकार की रचनाएँ उसके व्यक्तित्व, मन और मस्तिष्क की झलक देने में सहायक होती हैं, वहीं दूसरी ओर उसका व्यक्तित्व भी उन रचनाओं के अनुशीलन में सहायक बनता है। मैत्रेयी पुष्पा एक परिवर्तनकामी, स्वस्थ विचारधारा की संपोषक हैं। मैत्रेयी की कृतियाँ समाज के प्रत्येक वर्ग की स्त्री को चेतना संपक्षता के औजार सौंपतीं हैं। मैत्रेयी के अंदर का लोकधर्मी कलाकार त्रासद जीवन के पीछे स्थित कुटिल साजिशों की पोल खोलकर बुनियादी तथ्यों का उद्घाटन करता है। रूढ़िगत विधानों का उच्छेदन तथा उनके स्थान पर स्वस्थ सुलझे जीवन मूल्यों का आरोपण हमें मैत्रेयी की रचना प्रक्रिया में दिखाई पड़ता है। मैत्रेयी जी ने आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण किया है तथा स्त्री–शक्ति के नये आयाम खोजने का प्रयोग किया है।

आपके समय की स्त्री विमर्श की दृष्टि से चर्चित कथा लेखिकाओं कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मंजुल भगत, मृणाल पांडे, चित्रा मुद्‌गल, मृदुला गर्ग आदि की रचनाओं के आधार पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने के फलस्वरूप, यह सहज ही समझा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री विमर्श की दृष्टि से अनेक भेदभावपूर्ण परम्पराओं, अन्धविश्वासों तथा सदियों से चली आ रही स्त्री संहिता पर करारा प्रहार करते हुए स्वयं को आधुनिक स्त्री की तरह प्रस्तुत किया है। वह

परम्परागत भारतीय समाज को ठीक–ठाक पहचानती है और भावी नारी की अस्पष्ट सी छवि भी उनकी दृष्टि में रहती है। उन्होंने इस बात को भली प्रकार समझा है और समझाने का प्रयास भी किया है कि आज नारी को विद्रोहिणी बनाने के मूल में नारी यंत्रणा का लम्बा–चौड़ा इतिहास है। मैत्रेयी की शोषिता नारी किसी एक विशेष वर्ग की नहीं है वरन् एक ही उपन्यास में उन्होंने विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित नारी की पीड़ा को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। स्त्री विमर्श को लेकर पर्याप्त लेखन कर चुकी मैत्रेयी पुष्पा यह भी मानती हैं कि उनके स्त्री विमर्श को पुरुष प्रधान समाज और उसकी मान्यताओं के चलते ठीक–ठीक समझा जाएगा, इसमें उन्हें सन्देह भी होता है, लेकिन वह अपने अभीष्ट से मुँह नहीं मोड़ सकती। अपनी स्त्री विमर्श से सम्बन्धित कथाकृतियों के माध्यम से उन्होंने आज की स्त्री को दैनिक जीवन की उखाड़–पछाड़ से हटाकर जीवन संघर्षों से जोड़ने की ओर प्रवृत्त किया है। आज की नारी में प्रतिशोध और विद्रोह का भाव आने लगा है, लेकिन वह सब पुरुष के विरूद्ध न होकर उन परम्पराओं, मूल्यों और संस्थाओं के विरूद्ध है जो नारी के दमन के लिए उत्तरदायी रहे हैं और किसी सीमा तक आज भी मौजूद हैं। शैक्षिक तथा आर्थिक स्थिति की दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री पात्र विविध वर्गों तथा स्थितियों से सम्बन्धित हैं। आपके स्त्री पात्र अपनी विपरीत परिस्थितियों से जूझकर

अपना लक्ष्य स्वयं निर्धारित करने का इरादा रखते हुए देखे जा सकते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य के अनेक स्त्री चरित्र अपनी परिस्थितियों से तो संघर्ष करते ही हैं, दूसरों को प्रेरणा देने के लिए भी प्रस्तुत रहते हैं। स्त्री विमर्श को शहरी परिवेश तथा पात्रों तक ही सीमित न रखकर मैत्रेयी पुष्पा ने इससे गाँव की साधारण स्त्री तक को जोड़ने का जोखिम भरा प्रयास किया है, क्योंकि स्त्री शोषण अपने नारकीय रूप में शहरों की अपेक्षा गाँवों में ही अधिक बर्बरतापूर्ण रहा है। ग्रामीण बर्बर व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष के लिए मैत्रेयी पुष्पा ने सशक्त स्त्री पात्रों की संरचना की है। मैत्रेयी पुष्पा के ग्रामीण स्त्री पात्र सांस्कृतिक एवं धार्मिक वर्चस्व के दोहरे मानदण्डों को ललकारने की क्षमता से युक्त हैं। वह अपने नारी पात्रों को यथावत् प्रस्तुत करने में सम्भ्रान्त वर्ग की लेखिकाओं की भाँति झिझकती नहीं। अपनी कृत्यों के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने एक ऐसी स्त्री का स्वरूप उजागर किया है जो अमानवीय शोषण तथा पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था की झंझावत में थपेड़े

खाते–खाते उठने को बाध्य हुई और परिस्थितियों के संघात से शक्ति प्राप्त कर संघर्ष के लिए निर्णायक संघर्ष के लिए सामने आ डटी। आलोचक, मैत्रेयी पुष्पा को स्त्रीवादी लेखिका मानकर उनके लेखन को कमतर आँकने का प्रयास करते रहे हैं, क्योंकि उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा के जीवन, जीवनानुभवों तथा उनकी सोच को ठीक–ठीक समझने का प्रयास ही नहीं किया। स्त्रीवादी लेखिका उसे कहा जा सकता है जो उचित–अनुचित का विचार किए बिना केवल स्त्री के समर्थन में ही बात करती हो। मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनके पात्र पुरुष भी हैं और स्त्रियाँ भी। प्रशंसा पुरुषों की भी हुई है और निन्दा जहाँ उचित है, स्त्रियों की भी हुई है। प्रश्न मानवता का है। आदर्श मानव तथा मानवी मैत्रेयी पुष्पा की दृष्टि में आदरणीय हैं। स्त्री और पुरुष की श्रेष्ठता मैत्रेयी इस बात में स्वीकारती हैं कि बुराई के विरूद्ध संघर्ष में पति–पत्नी अथवा स्त्री–पुरुष मिलकर संघर्ष करें और समाज के सम्मुख अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करें। एक–दूसरे के हित में कार्य करें। स्त्री–पुरुष के द्वारा किए जाने वाले सम्मिलित संघर्ष में नारी यदि आदर्श भारतीय नारी की सीमाओं में बने रहने के लिए जागरूक है और पुरुष, स्त्री की इस भावना का आदर करता है, तो घर, परिवार, समाज और देश की उन्नति निश्चित है। अतः इस प्रकार की उच्च भावना को लेकर लेखन कर रही मैत्रेयी पुष्पा को स्त्रीवादी लेखिका न कहकर स्त्री विमर्श की सशक्त पैरोकार ही माना जा सकता है।